चौथी दुनिया

हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

www.chauthiduniya.com

आम आदमी पर दादा का डंडा

पेज 4

शेखावाटी में विकास के पंद्रह साल

पेज 7

साई की भक्ति सच्चाई का मार्ग दिखाती है

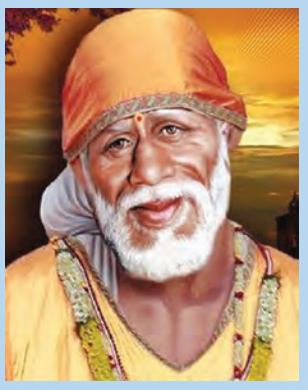

पेज 12

अब शंकराचार्य पद को लेकर बवाल

पेज 13

मूल्य 5 रुपये

दिल्ली, 15 मार्च–21 मार्च 2010

प्रधानमंत्री जी, क्या देश में प्रतिभा की कमी है?

डीयू कुलपति दीपक पेंटल

क्या दिल्ली विश्वविद्यालय का कुलपति बनने योग्य देश में कोई आदमी नहीं है? चौथी दुनिया को मानव संसाधन मंत्रालय की एक चिट्ठी हाथ लगी है, जिसमें लिखा है कि डीयू के वर्तमान कुलपति की फिर से नियुक्ति की जाए, क्योंकि देश में योग्य उम्मीदवार नहीं हैं. मंत्रालय की चिट्ठी की बातें सत्य हैं तो यह पूरे देश के लिए शर्मनाक है. आजादी के साठ साल बाद भी अगर हम कुलपति पद के योग्य एक शिक्षाविद पैदा नहीं कर सकते हैं तो ऐसी शिक्षा व्यवस्था का औचित्य क्या है? दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति दीपक पेंटल कितने सक्षम हैं, इसका जायजा चौथी दुनिया ले रही है. अब सरकार को यह जवाब देना चाहिए कि इस कहानी के पीछे की राजनीति क्या है?

शशिशेखर

केंद्रीय मानव संसाधन मंत्रालय दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. दीपक पेंटल पर मेहरबान है. यहां तक कि मंत्रालय उनके लिए नियमों में फेरबदल को भी तैयार है. इससे जो अनेक सवाल खड़े होते हैं, उनमें से एक यह भी है कि क्या भारत में ऐसे सक्षम लोगों की कमी हो गई है, जो हमारी विश्वविद्यालयी व्यवस्था की कमान संभाल सकें? ऐसा हम तो नहीं मानते, पर मानव संसाधन मंत्रालय का ऐसा ही मानना है. हाल ही में मंत्रालय ने दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति को जो पत्र लिखा है, उससे यही ध्वनि निकलती है. मानव संसाधन मंत्रालय ने सरकार के एक पुराने आदेश का हवाला देते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय (डीयू) के कुलपति दीपक पेंटल को सूचित किया है कि कुछ विश्वविद्यालयों ने कुलपति की सेवानिवृत्ति की उम्र सीमा 65 से बढ़ाकर 70 साल कर दी है. इसी पत्र में आगे लिखा गया है कि कुछ विश्वविद्यालयों में एक नियम ऐसा भी है, जो एक कुलपति को दूसरा कार्यकाल देने से रोकता है. पत्र में यह भी बताया गया है कि इस मुद्दे पर मंत्रालय में चर्चा हुई और तय किया गया कि जब ज़्यादातर केंद्रीय विश्वविद्यालयों में कुलपति की सेवानिवृत्ति की उम्र सीमा 70 साल कर दी गई है तो केंद्रीय विश्वविद्यालयों के वर्तमान कुलपतियों को उसी पद पर दोबारा नियुक्त कर देना ही उचित होगा. मजेदार बात है कि सरकार को यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं हुआ है कि शिक्षा जगत में विश्वविद्यालयी प्रशासनिक व्यवस्था संभालने के लिए सक्षम लोगों की कमी हो गई है. पत्र में यह भी लिखा गया है कि आज के समय में देश में ऐसे सक्षम लोगों की कमी है, जो हमारी विश्वविद्यालयी व्यवस्था में अकादमिक नेतृत्व देने को उत्सुक हों. इस पुनर्नियुक्ति का सरकार को यह भी फ़ायदा होगा कि जिन कुलपतियों ने बहुत अच्छा काम किया है, वे संबंधित विश्वविद्यालयों को अपनी सेवा जारी रख सकेंगे. पत्र में दीपक पेंटल को यह सुझाव भी दिया गया है कि वह विश्वविद्यालय के क़ानून में संशोधन के लिए एक उचित प्रस्ताव सक्षम अधिकारी के पास भेज दें, ताकि कुलपति की दोबारा नियुक्ति या उन्हें सेवा विस्तार देने का रास्ता बन सके.

इसका एक सीधा सा मतलब यह बनता है कि डीयू एक्ट के प्रावधानों में फेरबदल कर वर्तमान कुलपति दीपक पेंटल को आने वाले पांच वर्षों के लिए एक और मौक़ा दिया जाने वाला है. जाहिर है कि इसके बाद अनेक कुलपतियों को मानसिक रूप से अपनी नौकरी पक्की जैसी प्रतीत होने लगेगी.

27 जनवरी 2010 को मानव संसाधन मंत्रालय के संयुक्त सचिव सुनील कुमार के हस्ताक्षर से जारी यह पत्र खुद कई सवाल खड़े करता है. मसलन, यह किस आधार पर और किसने तय किया कि देश में ऐसे सक्षम लोगों की वास्तव में कमी है, जो विश्वविद्यालयी व्यवस्था में अकादमिक नेतृत्व देने को उत्सुक हों? क्या मानव संसाधन मंत्रालय ने इस संबंध में कोई सर्वेक्षण किया है और अगर कोई सर्वेक्षण किया गया है तो उसके क्या-क्या मानदंड रखे गए थे? जाहिर है, ये कुछ ऐसे सवाल हैं, जिनका जवाब मानव संसाधन मंत्रालय को देना होगा.

बहरहाल, इस पत्र के लिखे जाने का वक्त ऐसा है, जिससे बहुत कुछ साफ हो जाता है. जून 2010 में दीपक पेंटल का कुलपति के तौर पर पांच साल का कार्यकाल खत्म हो रहा है. पांच साल पहले जब दीपक पेंटल को कुलपति पद पर नियुक्त किया गया था तो काफी शोरशराबा मचा था. लेकिन इसी मानव संसाधन मंत्रालय ने तमाम विरोधों को धत्ता बताते हुए पेंटल को उस पद के लिए सक्षम माना था. हालांकि इस पांच साल में पेंटल पर डीयू के ही प्रोफेसरों और कर्मचारियों ने जो आरोप लगाए हैं, उनसे उनकी सक्षमता पर सवालिया निशान लगता दिखा. और, आरोप भी ऐसे-वैसे नहीं. दीपक पेंटल पर दलित उत्पीड़न से लेकर साहित्यिक चोरी (थीसिस चुराने) को बढ़ावा देने और मुकदमेबाजी के चक्कर में करोड़ों रुपये बर्बाद करने तक के आरोप लगे हैं. उक्त आरोप लगाने वाले लोग कहीं बाहर के नहीं हैं, बल्कि डीयू के ही प्रोफेसर, कर्मचारी या छात्र हैं. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग तक ने सीधे-सीधे दीपक पेंटल को एक प्रोफेसर को परेशान करने का दोषी माना है और इसकी रिपोर्ट सरकार तक पहुंचाई है.

हम आपको याद दिला दें कि चौथी दुनिया ने अपने 21-27 दिसंबर 2009 के अंक में पहली बार डीयू कुलपति दीपक पेंटल की नियुक्ति से जुड़े विवाद पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी. इस रिपोर्ट में बताया गया था कि अगस्त 2005 में दीपक पेंटल की कुलपति पद पर नियुक्ति में तमाम नियम-कानूनों को ताक पर रख दिया गया था. नियुक्ति से जुड़ी फाइल में ऐसा एक भी पत्र नहीं मिला, जिससे यह साबित हो सके कि पेंटल को कुलपति नियुक्त करने के लिए विजिटर (राष्ट्रपति) के हस्ताक्षर से कोई आदेश या पत्र जारी किया गया हो.

(शेष पृष्ठ 2 पर)

एक दिन में रीडर से प्रोफेसर बनाया

क्या कोई शख्स एक दिन में ही रीडर से प्रोफेसर बन सकता है? आमतौर पर नहीं, पर दिल्ली विश्वविद्यालय में सब कुछ संभव है. दिल्ली विश्वविद्यालय के अति सक्षम कुलपति दीपक पेंटल के आदेश से एक व्यक्ति जिस दिन रीडर के पद पर नियुक्त हुआ था, उसी दिन से वह प्रोफेसर के पद पर भी बहाल हो जाता है. आमतौर पर एक व्यक्ति को रीडर से प्रोफेसर बनने में 15 साल तक का समय लग जाता है. अगर एक ही दिन में रीडर से प्रोफेसर बनने वाली उम्मीदवार प्रधानमंत्री की सुपुत्री हो तो सवाल उठना लाजिमी है. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा बनाई गई गाइड लाइन के मुताबिक, अगर किसी रीडर ने रिसर्च के क्षेत्र में बहुत अच्छा काम किया हो या जिसके लेख या पुस्तक आदि प्रमुखता से छपे हों तो उसे समय से पहले करियर एडवांसमेंट स्कीम (सीएएस) के तहत प्रमोशन देकर प्रोफेसर बनाया जा सकता है. हालांकि एक प्रमुख शर्त यह भी है कि उक्त व्यक्ति ने अपने पद (रीडर) पर कम से कम 8 साल तक काम जरूर किया हो. लेकिन डीयू के इतिहास विभाग में 2007 में एक साक्षात्कार होता है और तीन रीडरों को करियर एडवांसमेंट स्कीम के तहत रीडर से प्रोफेसर बना दिया जाता है, जिनमें एक नाम प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की सुपुत्री प्रो. उपिंदर सिंह का भी होता है. राजनीति में अब अच्छे-बुरे में ज्यादा फर्क नहीं रह गया है. एक समय वह था, जब लाल बहादुर शास्त्री ने रेलमंत्री की कुर्सी सिर्फ इसलिए छोड़ दी, क्योंकि ड्राइवर की गलती से एक दुर्घटना हो गई थी. डाकुओं ने जब उत्तर प्रदेश में वारदात को अंजाम दिया तो तत्कालीन मुख्यमंत्री वी पी सिंह ने इस्तीफा दे दिया. न तो लाल बहादुर शास्त्री की गलती थी और न ही वी पी सिंह का कोई जुर्म था, लेकिन उन्होंने देशवासियों के सामने एक मिसाल पेश की. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जी ईमानदार हैं, कर्मठ हैं और योग्य भी हैं. लेकिन अगर अधिकारी और दूसरे मंत्री नियम-कानून की आड़ में इस तरह का नमूना पेश करेंगे तो लोगों के विश्वास को धक्का लगता है. हो सकता है कि यह काम कानून की नजर में सही हो, लेकिन जनता की नजर में जरूर खटकेगा.

पिता मनमोहन सिंह के साथ प्रो. उपिंदर सिंह

थीसिस चोरी और पेंटल

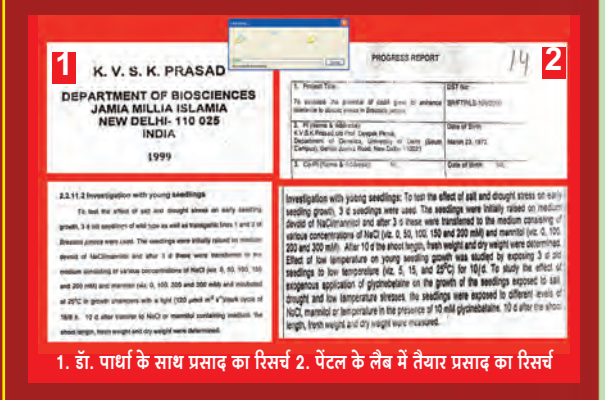

1. डॉ. पार्था के साथ प्रसाद का रिसर्च 2. पेंटल के लैब में तैयार प्रसाद का रिसर्च

डॉ. पी पार्था सराधी दिल्ली विश्वविद्यालय (डीयू) में इंवायरमेंटल बायोलॉजी के प्रोफेसर हैं. डीयू से जुड़ने से पहले वह जामिया मिलिया इस्लामिया में प्रोफेसर थे. उस दौरान डॉ. पार्था ने इंडो-जापान प्रोजेक्ट के तहत भारतीय सरसों में जीन परिवर्तन पर काम किया था. इस काम में उनके साथ उनके छात्र केवीएसके प्रसाद भी थे. प्रसाद डॉ. पार्था के नेतृत्व में भारतीय सरसों पर पीएचडी भी कर रहे थे. प्रसाद का यह पीएचडी कार्यक्रम भी इंडो-जापान प्रोजेक्ट का ही एक हिस्सा था. 1996 में शुरू हुआ यह प्रोजेक्ट साल 2000 के आखिर में पूरा हो गया और इसकी रिपोर्ट बाकायदा साइंस पत्रिका में छपी भी थी. इस प्रोजेक्ट के लिए खास तौर पर जापान से एक विशेष किस्म का जीन उपलब्ध कराया गया था. बहरहाल इस प्रोजेक्ट के पूरा होने के बाद केवीएसके प्रसाद ने डीयू (साउथ कैंपस) से जुड़ने का फैसला लिया, जहां जेनेटिक्स विभाग के सर्वेसर्वा तब दीपक पेंटल हुआ करते थे. प्रसाद पेंटल के साथ काम करने लगे. इसी दौरान साल 2001-02 में प्रसाद को डिपार्टमेंट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी (डीएसटी) से दो साल के लिए एक प्रोजेक्ट मिला. यह प्रोजेक्ट भी भारतीय सरसों के जीन अध्ययन से संबंधित था.

प्रसाद दीपक पेंटल की प्रयोगशाला (साउथ कैंपस, जेनेटिक्स विभाग) और उनके मार्गदर्शन में इस प्रोजेक्ट पर काम करने वाले थे. डॉ. पार्था कहते हैं कि प्रसाद ने डीएसटी के

(शेष पृष्ठ 2 पर)

(शेष पृष्ठ 2 पर)

बिहार स्पेशल कोर्ट्स अधिनियम, 2009 को एक साल की प्रतीक्षा के बाद केंद्र सरकार ने मंजूरी दे दी.

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

आईपीएस अधिकारियों की बल्ले-बल्ले

भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों की एक पुरानी शिकायत है. वह यह कि आईएएस अधिकारियों के मुकाबले उन्हें कम तरजीह मिलती है. दोनों सेवाओं के अधिकारियों के बीच आपसी प्रतिद्वंद्विता हमेशा से भारतीय नौकरशाही का एक अहम पहलू रहा है. हालांकि मौजूदा मनमोहन सिंह सरकार के दौर में ऐसा लगता है कि आईपीएस अधिकारियों के पास शिकायत के कम ही मौके हैं. नौकरशाही पर नजर रखने वाले लोगों की मानें तो यूपीए सरकार सरकारी नियुक्तियों के मामले में सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारियों के मुकाबले पुलिस अधिकारियों को ज्यादा अहमियत दे रही है.

शुरुआत हाल में हुई राज्यपालों की नियुक्ति से करते हैं. आज हालत यह है कि उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, मेघालय, मणिपुर और नागालैंड में अभी पूर्व आईपीएस अधिकारी ही राज्यपाल हैं. लेकिन, सभी सेवानिवृत्त अधिकारियों को राज्यपाल नहीं नियुक्त किया जा सकता. कई पूर्व आईपीएस अधिकारियों को अन्य महत्वपूर्ण पदों की जिम्मेदारी सौंपी गई है. सीबीआई के पूर्व डायरेक्टर विजय शंकर को केंद्र–राज्य संबंधों पर बने आयोग का सदस्य बनाया गया है, जबकि सीआईएसएफ के पूर्व महानिदेशक आर के दास को राष्ट्रमंडल खेलों के लिए सुरक्षा इंतजामों की देखरेख की जिम्मेदारी सौंपी गई है. खुफिया विभाग से जुड़े अधिकारी भी इस दौड़ में पीछे नहीं हैं. इनमें सबसे आगे हैं रॉ के पूर्व मुखिया ए एस दुलात, जिन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्ड का सदस्य बनाया गया है.

सरकारी नियुक्तियों में आईपीएस अधिकारियों को केंद्र सरकार द्वारा वरीयता दिए जाने से उन अधिकारियों की उम्मीद भी जगी है, जिन्हें नियुक्ति के समय सीआईएसएफ में भेज दिया गया था और वे आज भी वहीं बने हुए हैं. सूत्रों के मुताबिक, सरकार इनमें से कुछ अधिकारियों को आईपीएस और अन्य ग्रुप–ए सेवाओं में स्थानांतरित करने पर विचार कर रही है. इसमें कोई संदेह नहीं कि आईपीएस अधिकारियों, चाहे वे सेवा में हों या सेवानिवृत्त, के दिन फिरने के संकेत मिल रहे हैं.

बाबुओं पर नीतीश की नकेल

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार राज्य के करोड़पति नौकरशाहों (इसकी चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं) पर लगाम कसने की कवायद में अब अपना अगला कदम उठाने की तैयारी में हैं. उनकी यह कवायद यदि कामयाब होती है तो भ्रष्ट नौकरशाहों को न केवल अपनी नौकरियों से हाथ धोना पड़ेगा, बल्कि भ्रष्टाचार के आरोप प्रमाणित होने पर उनकी संपत्ति भी जब्त हो जाएगी. बिहार स्पेशल कोर्ट्स अधिनियम, 2009 को एक साल की प्रतीक्षा के बाद केंद्र सरकार ने मंजूरी दे दी. इसके अंतर्गत राज्य सरकार को भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतों के गठन के अलावा भ्रष्ट नौकरशाहों की संपत्ति जब्त करने का अधिकार भी हासिल है. राज्य के मुख्य सचिव अफजल अमानुल्लाह का दावा है कि इस कानून के लागू होने के साथ ही सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार को खत्म करने की दिशा में बिहार अन्य राज्यों से आगे हो गया है. नीतीश कुमार खुद भला ऐसे लोकलुभावन मुद्दों पर चुप कैसे रह सकते हैं. उन्होंने घोषणा कर दी है कि अधिकारियों से जब्त की गई संपत्ति से गांवों में नए स्कूल खोले जाएंगे. अगले साल होने वाले विधानसभा चुनावों के मद्देनजर यह घोषणा मतदाताओं को प्रभावित कर सकती है, क्योंकि भ्रष्टाचार हमेशा ही बिहार में एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है. हालांकि यह कहना मुश्किल है कि चुनाव के आते–आते इस मामले का कितना असर बरकरार रहेगा. राजनीति में एक साल का समय काफी लंबा होता है और बहुत कुछ इस पर निर्भर करेगा कि नीतीश सरकार राज्य के भ्रष्ट नौकरशाहों के खिलाफ कैसे आगे बढ़ती है. वैसे भी पुराने लोगों का कहना है कि उन्होंने ऐसी घोषणाओं और ऐसे कानूनों को अलग–अलग रूप में पहले भी कई बार देखा है.

प्रधानमंत्री जी, क्या देश में प्रतिभा की कमी है?

पृष्ठ एक का शेष

इसकी जगह राष्ट्रपति के सचिव पी एम नायर ने जरूर एक पत्र मानव संसाधन मंत्रालय को भेजकर पेंटल की कुलपति पद पर नियुक्ति की सूचना दी थी. इस रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद पेंटल की नियुक्ति से संबंधित कुछ और अहम दस्तावेज चौथी दुनिया को हासिल हुए, जिनसे साबित हुआ कि दीपक पेंटल डीयू एक्ट के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए कुलपति पद पर काबिज हैं. दरअसल, डीयू एक्ट की धारा 45 के तहत डीयू के किसी भी वेतनभोगी अधिकारी और डीयू के बीच एक लिखित अनुबंध होता है. लेकिन आरटीआई के तहत मिली जानकारी के मुताबिक, डीयू प्रशासन के पास इस तरह के किसी अनुबंध की कोई प्रति उपलब्ध नहीं है. जाहिर है, जब अनुबंध होगा ही नहीं तो उसकी कॉपी कहां से उपलब्ध होगी. डीयू एक्ट के जानकार मानते है कि लिखित अनुबंध के बिना अपने पद पर बने रहना गैरकानूनी है. लेकिन जब कोई सवाल उठाने वाला ही न हो तो ऐसी गतिविधियां भला कैसे रूक पाएंगी. बावजूद इसके कि इन सभी आरोपों की जांच कराई जाए, मानव संसाधन मंत्रालय को पेंटल अभी भी सक्षम नजर आ रहे हैं और उन्हें दोबारा पांच साल के लिए डीयू की जिम्मेवारी सौंपने की कवायद शुरू हो चुकी है. जाहिर है, मंत्रालय के इस कदम से सरकारी भाषा में सक्षम शब्द की परिभाषा आने वाले दिनों में पूरी तरह से बदलने वाली है.

shashishekhar@chauthiduniya.com

थीसिस चोरी और पेंटल

पृष्ठ एक का शेष

प्रोजेक्ट पर काम करने के बजाय पेंटल के रिसर्च वर्क पर ज्यादा ध्यान दिया, जबकि प्रसाद के प्रोजेक्ट को दीपक पेंटल ने ही अनुमोदित किया था और इस नाते प्रसाद के प्रोजेक्ट की जिम्मेवारी दीपक पेंटल की ही बनती थी. डॉ. पार्धा आगे सीधे शब्दों में आरोप लगाते हैं कि इस तरह दो साल तक प्रसाद दीपक पेंटल के लिए काम करते रहे और जब प्रोजेक्ट से संबंधित प्रोग्रेस रिपोर्ट जमा करने का समय आया तो प्रसाद ने बड़ी सफाई से मेरे पुराने प्रोजेक्ट से ही (जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में काम करने के दौरान डॉ. पार्धा को इंडो–जापान प्रोजेक्ट के तहत भारतीय सरसों में जीन परिवर्तन का प्रोजेक्ट मिला था और इस प्रोजेक्ट में प्रसाद भी शामिल थे) हूबहू नकल करके डीएसटी वाले प्रोजेक्ट की प्रोग्रेस रिपोर्ट बना ली. पार्धा कहते हैं कि चूंकि दीपक पेंटल की निगरानी में प्रसाद इस प्रोजेक्ट पर काम कर रहे थे, इसलिए किसी और की थीसिस चुराकर अपनी बताने का जो काम प्रसाद ने किया, उसके लिए दीपक पेंटल भी उतने ही दोषी हैं. बहरहाल, जब पार्धा ने इसकी शिकायत विश्वविद्यालय प्रशासन से की तो दिलचस्प रूप से दीपक पेंटल ने अपने ही खिलाफ जांच करने के लिए एक कमीशन का गठन किया. इस कमीशन में डीयू के ही प्रोफेसर शामिल थे. अब यह बात किसी को भी हैरान कर सकती है कि कोई प्रोफेसर अपने ही कुलपति के खिलाफ भला क्या और किस तरह की जांच कर सकता है.

और, हुआ भी ऐसा ही. आयोग के सदस्यों ने एक बार भी शिकायतकर्ता यानी डॉ. पार्धा से बात करने की जहमत नहीं उठाई और फैसला सुना दिया कि प्रसाद डीएसटी वाला प्रोजेक्ट स्वतंत्र रूप से कर रहे थे, दीपक पेंटल का इससे कोई लेना–देना नहीं था. और इस तरह से आयोग ने एकतरफा फैसला भी कर दिया. हालांकि पार्धा अब इस मामले को अदालत तक ले गए हैं और अंतिम फैसले का इंतजार अभी भी कर रहे हैं, लेकिन इस पूरे मामले से एक सवाल तो उठता ही है कि इतना गंभीर आरोप लगने के बाद भी भला मानव संसाधन मंत्रालय कैसे दीपक पेंटल को सक्षम मान रहा है और उन्हें दोबारा कुलपति पद का तोहफा देने की तैयारी कर रहा है?

डीयू कुलपति दीपक पेंटल

पेंटल पर एनसीएससी की रिपोर्ट

प्रोफेसर रमेश चंद्रा, डीयू

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने 2006 में अपनी एक रिपोर्ट में दीपक पेंटल को जाति के आधार पर भेदभाव करने का दोषी भी माना है. मामला डीयू के प्रोफेसर रमेश चंद्रा से जुड़ा है. चंद्रा दलित समुदाय से आते हैं. वह अंबेडकर सेंटर फॉर बायोमेडिकल रिसर्च के संस्थापक निदेशक थे. 9 मई 2006 को जारी की गई आयोग की जांच रिपोर्ट और सिफारिशों में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि दीपक पेंटल और डीयू के रजिस्ट्रार ने रमेश चंद्रा के साथ जाति के आधार पर भेदभाव किया है. आयोग ने अपनी सिफारिशें प्रधानमंत्री और मानव संसाधन मंत्रालय को भी भेजीं, लेकिन अभी तक इन सिफारिशों पर कुछ नहीं हुआ है. क्या इस मामले को भी पेंटल की सक्षमता का एक नमूना माना जाए, जिसके आधार पर मानव संसाधन मंत्रालय उन्हें दोबारा कुलपति पद देकर सम्मानित करना चाहेगा?

करोड़ों रुपये की फिजूलखर्ची

अब इसे प्रशासनिक विफलता माना जाए या कुछ और? पिछले पांच सालों में डीयू प्रशासन ने मुकदमेबाजी के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च किए हैं. 2005 से एक तर्क यह दिया जा रहा है कि सूचना कानून के आने के चलते और छोटे–मोटे केसों की संख्या बढ़ने से खर्च बढ़ रहा है. 2004–05 से लेकर 2008–09 तक डीयू प्रशासन ने करीब 1 करोड़ 22 लाख रुपये सिर्फ वकीलों की फीस के नाम पर खर्च किया है. वैसे बता दें कि सूचना कानून के तहत कम से कम केंद्रीय सूचना आयोग तक जो केस जाता है, उसमें वकीलों की जरूरत नहीं होती है. संबंधित व्यक्ति स्वयं अपना पक्ष रख सकता है. हां, अगर इसके बाद हाईकोर्ट या सुप्रीमकोर्ट में जाने की जरूरत पड़े, तभी वकील की जरूरत होती है.

बहरहाल, ध्यान देने की बात यह है कि 2005 से पहले डीयू के कुलपति थे दीपक नैय्यर. 1999–2004 के दौरान भी डीयू प्रशासन केस लड़ता रहा है. और, नैय्यर के कार्यकाल में वकीलों की फीस पर खर्च की जाने वाली रकम थी लगभग 50 लाख रुपये. अब यह तथ्य समझ से परे है कि बाद के पांच सालों में (पेंटल के कार्यकाल में) ऐसा क्या हो गया कि वकीलों को दी जाने वाली फीस अचानक तीन गुना बढ़ गई. क्या मानव संसाधन मंत्रालय इस तथ्य को भी पेंटल की सक्षमता से जोड़कर देख रहा है?

चौथी दुनिया
देश का पहला साप्ताहिक अखबार

वर्ष 2 अंक 1
दिल्ली, 15 मार्च–21 मार्च 2010

संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210–211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के – 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय

के –2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001

कैंप कार्यालय एफ–2, सेक्टर –11, नोएडा
गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश–201301

फोन न.

संपादकीय 0120–47839990/11–23418962
विज्ञापन + 91 9873575318
प्रसार + 91 9810017924
फैक्स न. 0120–4783950

पृष्ठ–16 (+4)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनः प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

हेडगेवार की मौत के बाद नाना जी ने आरएसएस ज्वाइन किया और वह कुछ ही दिनों में उत्तर प्रदेश के प्रांत प्रचारक बन गए.

नाना जी देशमुख : एक विलक्षण व्यक्तित्व

मनीष कुमार

हम में से बहुतों को शायद 1974 में बिहार में जेपी के नेतृत्व वाले आंदोलन की याद न हो, पर अब भी लोगों को चार नवंबर की वह दोपहर ज़रूर याद होगी, जब जेपी पटना में हज़ारों लोगों का एक जुलूस लीड कर रहे थे. तत्कालीन सरकार के सामने नारे लग रहे थे–सच कहना अगर बग़ावत है तो समझो हम भी बाग़ी हैं. पटना के बेली रोड में जब यह जुलूस रेवेन्यू बिल्डिंग के पास पहुंचा तो अब्दुल गफूर सरकार के प्रशासन का धैर्य टूट गया और तुरंत लाठीचार्ज का आदेश जारी कर दिया गया. स्थानीय प्रशासन ने यह देखने की भी ज़रूरत नहीं समझी कि उसकी लाठियां किस पर गिरने वाली हैं. प्रशासन की लाठियां गिरीं जेपी पर, लेकिन उन्हें बचाने के लिए जो सबसे पहला हाथ जेपी पर छाते की तरह आया, वह नानाजी देशमुख का था. 60 वर्ष के नानाजी ने जेपी पर किए गए सारे वारों को खुद पर झेल लिया और बाद में घायल होकर भी कहते रहे कि वह साठ बरस के नौजवान हैं.

राजनीतिक जीवन में ऐसे बहुत ही कम लोग होते हैं, जिनका नाम विचारधारा, संगठन और दलगत राजनीति से ऊपर लिया जाता है. ऐसे बहुत कम लोग होते हैं, जो विपक्षी दलों के भी प्रशंसा के हक़दार बन जाते हैं. भारत में अगर वह व्यक्ति आरएसएस से जुड़ा हो तो यह इज़्ज़त पाना नामुमकिन सा लगता है, लेकिन चंडिकादास अमृतराव देशमुख भारतीय राजनीति की ऐसी ही महान शख्सियत थे. भारतीय राजनीति में ऐसे लोग नहीं बचे हैं, जो सक्रिय होते हुए भी मंत्री की कुर्सी ठुकरा दें. ऐसे राजनेता कहां हैं, जो मंत्रालय की कुर्सी को ठोकर मारकर देश में शिक्षा, स्वास्थ्य और ग्रामीणों के स्वाबलंबन के लिए जीवन भर काम करते रहें. मगर नाना जी इन्हीं कुछ ख़ास लोगों में से एक थे. नाना जी देशमुख महाराष्ट्र के परभानी ज़िले के कादोली गांव के थे. उनका जीवन संघर्ष की गाथा है. नाना जी देशमुख ने छोटी उम्र में ही अपने माता–पिता को खो दिया था. उनका लालन–पालन उनके ग़रीब मामा ने किया. पैसे नहीं थे, इसलिए अपनी पढ़ाई के लिए नानाजी सब्जियां बेचकर पैसा जमा करते थे. कई बार हालत यह हो जाती थी कि उन्हें मंदिरों में रात गुज़ारना पड़ा. किसे पता था कि महाराष्ट्र का यह बालक आगे चलकर देश की राजनीति की दिशा बदलने वाला है. महाराष्ट्र अगर जन्मभूमि थी तो उत्तर प्रदेश और राजस्थान नानाजी की कर्मभूमि बनी.

हेडगेवार की मौत के बाद नानाजी ने आरएसएस ज्वाइन किया और वह कुछ ही दिनों में उत्तर प्रदेश के प्रांत प्रचारक बन गए. उत्तर प्रदेश में संघ की विचारधारा और संगठन को फैलाने का काम आसान नहीं था, क्योंकि संघ के पास इसके लिए न तो पैसे थे और न ही समर्थक. नानाजी ने इसी दौरान बाबा राघवदास के आश्रम को अपना ठिकाना बनाया. आश्रम में रहने के लिए उन्हें खाना बनाना पड़ता था और साथ में वह संघ के काम को भी देखते थे. यह बताता है कि नानाजी ने संघ को उत्तर प्रदेश में खड़ा करने के लिए क्या कुछ नहीं किया होगा. तीन साल के अंदर में अपनी कड़ी मेहनत से नानाजी देशमुख ने उत्तर प्रदेश में 250 शाखाएं शुरू कर दी थीं. अपने राजनीतिक और सामाजिक जीवन में नानाजी ने शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया. नानाजी देशमुख ने गोरखपुर में देश के पहले सरस्वती शिशु मंदिर की

फोटो–प्रभात पांडेय

स्थापना की. संघ ने 1947 में दो अखबार निकालने का फैसला किया. स्वदेश और पांचजन्य. अटल बिहारी वाजपेयी इस अखबार के संपादक थे और नानाजी मैनेजिंग डायरेक्टर. गांधी जी की हत्या के बाद जब संघ पर प्रतिबंध लगा, तब इन दोनों अखबारों का काम बंद हो गया था, लेकिन नानाजी भूमिगत होकर दोनों अखबारों को छापते रहे. जब संघ से प्रतिबंध हटाया गया तो संघ ने भारतीय जनसंघ की स्थापना की. नानाजी के राजनीतिक करियर की शुरुआत यहीं से हुई. उन्हें उत्तर प्रदेश का महासचिव बनाया गया. नानाजी ने भारतीय जनसंघ को उत्तर प्रदेश में खड़ा कर दिया. इसका असर यह हुआ कि 1967 में उत्तर प्रदेश में चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में जब पहली गैरकांग्रेसी सरकार बनी, तो इसमें नानाजी की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी. इस गठबंधन को एकजुट करने में नानाजी ने अहम रोल निभाया था. उत्तर प्रदेश में पहली गैरकांग्रेसी सरकार देने का श्रेय नानाजी को इसलिए भी जाता है, क्योंकि उन्हीं की वजह से अलग –अलग पार्टियों का गठबंधन बन सका. नानाजी देशमुख राजनीति में शुचिता और नैतिकता के जबरदस्त पैरोकार थे. इसलिए उन्होंने विनोबा भावे के साथ मिलकर भूदान आंदोलन में भी हिस्सा लिया. जब जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति का आह्वान किया, तब नानाजी इस आंदोलन में अहम भूमिका में सक्रिय दिखे. जब जनता पार्टी बनी, तब भी नानाजी इसके गठन में मुख्य किरदार रहे. 1977 में जनता सरकार बनी, तब प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने नानाजी को उद्योग मंत्री बनने का अनुरोध किया, पर उन्होंने बड़े सहज भाव से मंत्री बनने से इंकार कर दिया.

नानाजी देशमुख इस बात को मानते थे कि राजनेताओं को 60 साल की उम्र के बाद राजनीति से सेवानिवृत्त हो जाना चाहिए. नानाजी जो कहते थे, वही करते भी थे. 1980 में जब वह 60 साल के हो गए तो उन्होंने सक्रिय राजनीति को अलविदा कह दिया और सामाजिक कार्यों में जुट गए. हर हाथ को देंगे काम, हर खेत को देंगे पानी के विचार को लेकर उत्तर प्रदेश के गोंडा और महाराष्ट्र के बीड जिले में गरीबों के लिए उन्होंने कई काम किए. नानाजी ने चित्रकूट के 500 गांवों को स्वाबलंबी बनाने और गरीबी उन्मूलन का सफल कार्यक्रम चलाया. चित्रकूट में नानाजी ने देश के पहले ग्रामीण विश्वविद्यालय की स्थापना की. नानाजी ने ग्रामीणों के विकास का एक अलग मॉडल तैयार किया और उसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई एवं कृषि से जोड़ा. नानाजी के लिए विकास का मतलब सरकारी योजना नहीं था. उनका मानना था कि समुचित विकास के लिए लोगों की हिस्सेदारी से समाज का पूरा बदलाव जरूरी है. 2005 में उन्होंने चित्रकूट में स्वाबलंबन अभियान की शुरुआत की, जिसमें 2010 तक 500 गांवों को स्वाबलंबी होना था, लेकिन यह देखने के लिए नानाजी देशमुख अब नहीं हैं. नानाजी देशमुख जाते–जाते अपना शरीर भी आल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट को दान कर गए. राजनीति में ऐसे लोग नहीं मिलते, जो समाजसेवा के लिए जीवन को समर्पित करते हों. राजनीति में त्याग, तपस्या एवं सेवा की आखिरी धरोहर नानाजी देशमुख अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन वह अपने पीछे संघर्ष की एक ऐसी विरासत छोड़ गए हैं, जो राजनीति में अनोखी है. ऐसा कौन नेता होगा, जो बुलंदी पर रहते हुए समाजसेवा के लिए राजनीति से संन्यास ले ले और देश के गांवों की दशा बदलने के लिए काम करे. नानाजी देशमुख आजाद भारत के उन चंद लोगों में से हैं, जिन्होंने गांव के गरीबों के लिए अभियान चलाया और हजारों ग्रामीणों की जिंदगी बदल डाली. वैचारिक दृष्टि से भी नानाजी ने कमाल किया है. उन्होंने शोषण करने वाले पूंजीवाद और डोगमेटिक वामपंथ के बीच विकास का ऐसा मॉडल तैयार किया, जिससे भारत के गांवों का कायापलट किया जा सकता है. यह बात भी सही है कि नानाजी को वह ख्याति नहीं मिली, जिसके वह हकदार थे. नानाजी कर्मयोगी थे, किसी ख्याति या पुरस्कार के लिए लालायित नहीं रहते थे. नानाजी के लिए सही श्रद्धांजलि कोई पुरस्कार नहीं, बल्कि भारत के उन गरीबों की मुस्कान है, जिनके विकास के लिए उन्होंने मरते दम तक काम किया. राजनीति के क्षेत्र में जो लोग काम करते हैं, उनके लिए नानाजी देशमुख सदैव एक प्रेरणास्रोत और अनुकरणीय बने रहेंगे.

manish@chauthiduniya.com

दादा ने बेरोज़गारों को भी एक बार फिर ठगा है. उनका दावा है कि इस बजट के बाद क़रीब 2 लाख युवकों को रोज़गार मिलेगा.

आम आदमी पर दादा का डंडा

दादा यानी प्रणब मुखर्जी कांग्रेस के सबसे वरीय नेता हैं और यदि पार्टी में लोकतंत्र होता तो वह प्रधानमंत्री होते. उनके हुनर के सभी कांग्रेसी कायल हैं. इसके बावजूद बजट बनाते समय उनके सामने देश का आम आदमी क्यों नज़र नहीं आया, यह आश्चर्यजनक है. घूम-फिर कर प्रणब दा भी देश के उन्हीं कॉरपोरेट घरानों और अमीर लोगों को ख़ुश करने वाला बजट लेकर आ गए, जिसके पीछे हमारी तमाम सरकारें चलती रही हैं. पेश है एक विश्लेषण.

अंचल सिन्हा

हालांकि बजट के बारे में जब आप पढ़ रहे होंगे, तब तक दादा के डंडे से आम आदमी की कमर पर अनेक वार हो चुके होंगे और दादा विपक्ष द्वारा उठाए गए सवालों का जवाब भी दे चुके होंगे. लेकिन, तब तक यह बात साफ़ हो जाएगी कि दादा के जिस बजट से पूरा देश बहुत उम्मीद लगाए बैठा था, उसने कुल मिलाकर आम आदमी को एक बार फिर निराश कर दिया. असल में बीमारी कहीं है और इलाज कहीं और ढूंढा जा रहा है. सच्चाई यह है कि देश के ज़्यादातर राजनीतिक दलों के सामने यही तस्वीर साफ़ नहीं है कि देश का आम आदमी कौन है और ख़ास आदमी कौन.

इसके लिए हमें थोड़ा पीछे जाना होगा. नरसिंह राव के प्रधानमंत्रित्व काल में, जब आज के प्रधानमंत्री ही वित्तमंत्री थे. तबसे आम आदमी की परिभाषा बदलने का कांग्रेस ने तो जैसे व्रत ही ले लिया. कांग्रेस का हाथ, आम आदमी के साथ का नारा देकर चुनाव जीतने वाली कांग्रेस इस समय आम आदमी को पूरी तरह भुला चुकी है. दादा यानी आज के वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी ने पिछले महीने की 26 तारीख़ को आम आदमी के बजट के नाम पर जो डंडा चलाया है, उसे लोग बहुत आसानी से भूल नहीं पाएंगे. लोगों को सबसे ज़्यादा परेशानी तब होती है, जब वे पाते हैं कि 2004 से देश पर जो यूपीए राज कर रही है, उसमें वित्तीय संचालन के मास्टर माने जाने वाले मनमोहन सिंह मुखिया की भूमिका में हैं और उनके दाएं-बाएं खड़े हैं प्रणब मुखर्जी एवं मोंटेक सिंह अहलूवालिया जैसे दिग्गज. इसके बावजूद आम आदमी की मौलिक ज़रूरतों के प्रति वह कोई उचित रास्ता नहीं बना पा रहे हैं. कम से कम इस बजट से तो यही लगता है.

दादा ने अपने बजट में इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि विपक्ष के ज़्यादा शोर मचाने पर वह कुछ कटौती प्रस्तावों को स्वीकार कर लेंगे. इस हिसाब से दादा ने 1991 में तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह द्वारा बताई गई खुले बाज़ार और उदारीकरण की लाइन से ज़रा भी इधर उधर न होने को ही प्रमाणित किया है. 1991 के बाद से जो दूसरी सरकारें भी बनीं, वे चाहे एनडीए की हो या कांग्रेस की, सबने कमोबेश एक जैसी ही लाइन रखी. पर इस बार आम आदमी को जाने क्यों यह उम्मीद दिखने लगी थी कि शायद दादा कुछ नया करें, क्योंकि सोनिया गांधी और राहुल गांधी ने ऐसा करने के लिए इशारा किया होगा. पर दादा ने ऐसा कुछ भी नहीं किया, जिससे आम आदमी कहीं से भी अपने को बोझरहित महसूस कर सके. इस बजट पर चर्चा करने से पहले हमें एक बार आम आदमी के बारे में समझना चाहिए.

देश में अभी भी 71 फ़ीसदी लोग गांवों में रहते हैं, जिनमें से केवल 10 फ़ीसदी बड़े किसान हैं. जो 29 फ़ीसदी लोग शहरों में रहते हैं, उनमें से लगभग 14 फ़ीसदी मज़दूरी और दूसरे ऐसे काम करते हैं, जिससे उनकी आय बमुश्किल 6000 रुपये प्रतिमाह बनती है. शहरों में रहने वाले बाकी 15 फ़ीसदी लोगों में से दो फ़ीसदी ऐसे हैं, जिनके पास अपार काला धन है. पर बाक़ी लोगों में से 11 फ़ीसदी लोग सरकार को प्रत्यक्ष कर देते हैं और दो फ़ीसदी लोग करों की भरपूर चोरी करते हैं. यानी कुल मिलाकर आम आदमी के दायरे में कम से कम 75 फ़ीसदी लोग आते हैं, यह सरकारी आंकड़े में स्वीकार किया गया है. इसका अर्थ है कि इन 75 फ़ीसदी लोगों में सबसे बड़ी संख्या छोटे और मंझोले किसानों की है और लगभग छह फ़ीसदी नौकरी-पेशा करने वालों की.

ऐसे में दादा के बजट के बाद पहला सवाल उठता है कि उन्होंने इन 75 फ़ीसदी लोगों के लिए क्या दिया है. कृषि विशेषज्ञ देवेंद्र शर्मा कहते हैं कि दादा का बजट खेती के क्षेत्र के लिए बेहद निराशाजनक है. दादा ने अपने बजट में इस क्षेत्र के लिए कोई ठोस कार्ययोजना नहीं दी है. कम ब्याज पर लोन देना कोई राहत की बात नहीं है, क्योंकि लोन देने के बाद अगर किसानों को उनके उत्पादन का लाभप्रद मूल्य नहीं मिला तो बाद में उन्हें लोन चुकाना मुश्किल हो जाता है और सरकार को अंतत: उसे माफ करने की मजबूरी बन जाती है. इससे बैंकिंग क्षेत्र को भी नुक़सान उठाना पड़ता है. पिछले साल सरकार ने किसानों के 60 हज़ार करोड़ रुपये के लोन माफ किए. उससे क्या किसानों की दशा में सुधार हो गया! दादा को खेती के लिए कम से कम चार फ़ीसदी की विकास दर के लिए रास्ता बताना चाहिए था. दलहन और तिलहन के मद में 300 करोड़ रुपये और 60 हज़ार दलहन-तेल बीजग्राम की बात पूरी कैसे होगी, इसके बारे में साफ़ बताया नहीं गया है. अब यह बात छुपी नहीं है कि हरित क्रांति के नाम पर जो तकनीक अपनाई गई, उसके कारण पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश के खेतों की उर्वरा शक्ति समाप्त हो गई है. इस पर दादा का ध्यान नहीं गया.

मैंने अपने बजट में इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि विपक्ष के ज़्यादा शोर मचाने पर कुछ कटौती प्रस्तावों को स्वीकार कर लेंगे. इस हिसाब से मैंने 1991 में तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह द्वारा बताई गई खुले बाज़ार और उदारीकरण की लाइन से ज़रा भी इधर-उधर न होने को ही प्रमाणित किया है. 1991 के बाद से जो दूसरी सरकारें भी बनीं, वे चाहे एनडीए की हो या कांग्रेस की, सबने कमोबेश एक जैसी ही लाइन रखी.

फोटो-*प्रभात पांडेय*

सरकार अपने आधारभूत ढांचे के ख़र्च में दी गई राशि में से 25 फ़ीसदी हिस्सा गांवों को देने की बात कह रही है, पर ऐसे में सड़कों या दूसरी ज़रूरी चीज़ों के लिए जो कमी होगी, वह कैसे पूरी की जाएगी, इसके बारे में कोई बात नहीं कही गई है. यूपीए सरकार पहली बार 2004 में सत्ता पर क़ाबिज़ हुई थी. उसके तुरंत बाद से महंगाई ने अपना दायरा बढ़ाना शुरू कर दिया था. पर यूपीए-1 ने आम आदमी को बार-बार यह कहकर भरमाने की कोशिश की कि एनडीए ने जो कुछ उसे दिया है, उसे रास्ते पर लाने में थोड़ा समय लगेगा. लोगों ने धैर्य से यूपीए को देखना जारी रखा, पर महंगाई बेलगाम होती गई. लोग पिस रहे थे, तो भी सोनिया गांधी और मनमोहन सिंह के इस आश्वासन पर भरोसा करके कि दूसरी बार सत्ता में आने के 100 दिनों के अंदर यूपीए सरकार महंगाई पर न केवल नियंत्रण करेगी, बल्कि उसे कम करेगी, जनता ने उसे वोट दिया. पर सरकार का झूठ सबके सामने है. महंगाई ने कैसे आम आदमी और पूरे मध्य वर्ग को पानी-पानी करके छोड़ दिया है, कहने की ज़रूरत नहीं है. पर दादा के बजट से लोग तब भी आस लगाए बैठे थे.

दादा ने बजट में महंगाई को लेकर ऐसी चुप्पी साधी कि पूरे विपक्ष को, भाजपा, लालू यादव एवं मुलायम सिंह और यहां तक कि वामपंथियों को भी एकजुट होकर लोकसभा में कार्य स्थगन प्रस्ताव लाना पड़ा. और, बेशर्मी तो यह कि शरद पवार यह कहने लगे कि महंगाई कम हो रही है. बाद में दादा ने बात संभालते हुए कहा कि महंगाई कुछ महीनों में कम होगी. मज़ेदार बात यह कि उसी दिन से दिल्ली में पेट्रोल एवं डीजल के दाम प्रति लीटर 2.50 रुपये से ज़्यादा बढ़ गए और उसके कारण दाल एवं सब्जी तुरंत और महंगी हो गई. दादा ने कहा कि मध्य वर्ग को वह राहत दे रहे हैं, इसलिए आयकर की सीमा एक लाख रुपये से बढ़ाकर 1.60 लाख रुपये की जा रही है. पर यह जानना ज़रूरी है कि आयकर की छूट का लाभ उठाने वाले कितने लोग हैं-केवल 11 फ़ीसदी. इनमें वे भी हैं, जिनकी सालाना आय सालाना पांच लाख रुपये से आठ लाख रुपये के बीच है.

दादा से यह भी उम्मीद की जा रही थी कि वह अप्रत्यक्ष करों में राहत देंगे, पर वह यहां भी वह कन्नी काट गए. सीमा शुल्क में बढ़ोत्तरी करके उसका तुरंत असर बाज़ार को दिखा दिया गया. असल में दादा के बजट ने काग़ज़ी जाल फेंकने के सिवा और कुछ भी नहीं किया है. इसकी ओर इशारा 25 फरवरी को पेश किए गए आर्थिक सर्वेक्षण में पहले ही कर दिया गया था. सरकार कहती है कि ग्रोथ रेट 7.2 फ़ीसदी है, जो पिछले साल की 6.7 फ़ीसदी की तुलना में काफ़ी उत्साहजनक है. इसके अलावा जीडीपी की दर भी बढ़कर 8.5 फ़ीसदी हो गई है. कारखानों की उत्पादन क्षमता भी 3.2 फ़ीसदी से बढ़कर 8.9 फ़ीसदी तक पहुंच गई है. यहां तक कि प्रति व्यक्ति आय भी 3.7 फ़ीसदी से बढ़कर 5.3 फ़ीसदी हो गई है.

सरकार के ये काग़ज़ी आंकड़े सुनने में अच्छे लगते हैं, लेकिन व्यवहार में वे कहां हैं? जब एक आम आदमी बाज़ार में दाल और चीनी ख़रीदने जाता है तो उसे 42 रुपये प्रति किलो की जगह 90 रुपये दाल के लिए और 22 रुपये प्रति किलो की जगह 42 रुपये देने पड़ते हैं. ऐसे में उसे सरकार के झूठ से गुस्सा आता है. अभी हाल ही में उड़ीसा से ख़बर आई कि वहां 50 से ज़्यादा मौतें भूख से हुई हैं. क्या आपको पता है कि विश्व के स्तर पर एक भूख सूचकांक बना है. इसे देखकर दादा को दुखी होना चाहिए, क्योंकि इसमें भारत को इथियोपिया से भी नीचे रखा गया है. यानी भारत में सबसे ज़्यादा लोग भूख से मर रहे हैं. और, मानव विकास सूचकांक में तो भारत का स्थान 134वां हो गया है. 1996 से लेकर 2007 तक देश में दो लाख से भी ज़्यादा किसानों ने आत्महत्या की, जो आज भी बदस्तूर जारी है. अगर 63 बरसों की आज़ादी के बाद हम इस हालत में हैं तो क्या देश पर सबसे ज़्यादा समय तक राज करने वाली कांग्रेस पार्टी के लिए यह कम शर्म की बात है!

दादा ने बेरोज़गारों को भी एक बार फिर ठगा है. उनका दावा है कि इस बजट के बाद क़रीब दो लाख युवकों को रोज़गार मिलेगा. लेकिन सरकारी आंकड़े बताते हैं कि मंदी के दौर में कम से कम 55 लाख लोगों का रोज़गार गया था. इस बार जो नौकरियां आ रही हैं, वे सेवा क्षेत्र में हैं. मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र में अभी तक रोज़गार का रास्ता नहीं खुल रहा है. बजट में इसके लिए कोई रास्ता नहीं दिखाया गया है. अपने यहां अप्रत्यक्ष करों की संख्या पहले से ही कितनी ज़्यादा है. क्या ऐसा नहीं हो सकता कि देश में एक करीय व्यवस्था लागू हो जाए? इसके अलावा सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए ज़्यादा राशि रखनी चाहिए थी. दादा ने पहले से केवल 4000 करोड़ रुपये बढ़ाए. अब आप स्वास्थ्य परीक्षण कराने जाएंगे तो भी आपको सेवा कर देना होगा. इसके अलावा मकान को किराए पर देने पर भी आपको कर देना होगा. ज़ाहिर है, इसका असर आम आदमी पर ही पड़ने वाला है.

जहां तक निवेश की बात है, यह पिछले साल के 37 फ़ीसदी से घटकर केवल 34 फ़ीसदी रह गया है. इसके अलावा कृषि क्षेत्र में अनाज और मोटे अनाज के उत्पादन में 20 फ़ीसदी की गिरावट आई है. छोटे और असंगठित क्षेत्र में भी गिरावट आई है. ऐसे में 60,000 गांवों के लिए केवल 300 करोड़ रुपये का प्रावधान सरकार की गंभीरता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है. दादा के बजट में एक ही अच्छी बात है. उन्होंने शिक्षा के लिए राशि बढ़ाई है और ग्रामीण विकास के नाम पर 66,000 करोड़ रुपये रखे हैं. पर इन्हें लागू करने वाली भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था पर दादा लगाम कैसे कसेंगे, इसके बारे में बजट में कोई सुझाव नहीं है. राहुल गांधी भी कहने लगे हैं कि केंद्र से चला रुपया गांव तक आते-आते 15 से 20 पैसे भर रह जाता है. उनके पिता राजीव गांधी भी ऐसा ही कहते थे. पर बिचौलियों के पेट में जाने वाली इस 80-85 फ़ीसदी राशि को कैसे आम आदमी तक पहुंचाने का रास्ता बनाया जाएगा, इसे कौन बताएगा और कब बताएगा!

feedback@chauthiduniya.com

कांग्रेस ने अपने चुनाव घोषणापत्र में वायदा किया था कि अपनी सरकार बनने पर गुजरात में हुए अल्पसंख्यकों के क़त्लेआम जैसी घटनाओं को रोकने के लिए वह एक नया क़ानून बनाएगी.

सांप्रदायिक हिंसा विधेयक रोग से बदतर इसका इलाज है

डॉ. असगर अली इंजीनियर

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने सरकार को संसद के बजट सत्र में सांप्रदायिक हिंसा विधेयक प्रस्तुत करने की मंज़ूरी दे दी है. इस विधेयक का मूल प्रारूप सन् 2005 में तैयार हुआ था.

सन् 2002 के गुजरात क़त्लेआम में भाजपा सरकार व नरेंद्र मोदी की भूमिका से नाराज़ मुसलमानों ने 2004 के आम चुनाव में कांग्रेस को बड़े पैमाने पर अपना समर्थन दिया, जिसके कारण एन.डी.ए गठबंधन को धूल चाटनी पड़ी.

कांग्रेस ने अपने चुनाव घोषणापत्र में वायदा किया था कि अपनी सरकार बनने पर गुजरात में हुए अल्पसंख्यकों के क़त्लेआम जैसी घटनाओं को रोकने के लिए वह एक नया क़ानून बनाएगी. इस क़ानून का मसौदा भी सरकार ने तैयार किया. इस मसौदे का हमारे सेंटर सहित कई ग़ैर-सरकारी संगठनों, मानवाधिकार कार्यकर्ताओं और क़ानून विशेषज्ञों ने अध्ययन किया था और इसमें कई कमियां पाई थीं. हमने बिल के मसौदे पर कई चर्चाएं और संगोष्ठियां भी आयोजित की थीं और मसौदे में कई ऐसे संशोधन सुझाए थे, जिनसे वह इन उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हो सकता था, जिनके लिए इसे बनाने की चर्चा है. तत्कालीन गृह मंत्री शिवराज पाटिल ने भी इस विधेयक पर कई शहरों में विचार-विमर्श किया था और यह आश्वासन दिया था कि ग़ैर सरकारी संगठनों व अन्य संस्थाओं द्वारा विधेयक में संशोधन के लिए दिए गए सुझावों पर विचार किया जाएगा. परंतु इस विधेयक का अंतिम मसौदा तैयार करते समय हमारे सुझावों को कोई महत्व नहीं दिया गया.

विधेयक का वर्तमान मसौदा, जिसे संसद की स्थायी समिति व कैबिनेट ने स्वीकृति दे दी है, मूल प्रारूप से ज़रा भी बेहतर नहीं है. सरकार की असली मंशा क्या है, यह हमारी समझ से परे है. इसीलिए हमने कहा कि इलाज, रोग से बदतर ही हो गया है.

सबसे ज़्यादा चिंता की बात यह है कि वर्तमान विधेयक पुलिस को और अधिक शक्तियां देता है. जहां तक सांप्रदायिक हिंसा का सवाल है, अपने यहां की पुलिस, समस्या ज़्यादा है और समाधान कम. अगर हमारे देश की पुलिस निष्पक्ष होती तो शायद ही कोई सांप्रदायिक दंगा 24 घंटे से अधिक अवधि तक चल पाता. जो सरकारें दंगों को सचमुच रोकना चाहती हैं, उन्हें पुलिस के शीर्ष नेतृत्व से इतना भर कहना होता है कि अगर 24 घंटे में दंगे बंद नहीं हुए तो संबंधित पुलिसवालों के ख़िलाफ़ सख्त कार्यवाही की जाएगी, और दंगे रुक जाते हैं.

जिन लोगों ने भी सांप्रदायिक दंगों का अध्ययन किया है, वह यह अच्छी तरह से जानते हैं कि दंगों के दौरान पुलिस की क्या भूमिका रहती है. वह मूकदर्शक बनी रहती है या दंगों में भाग लेती है. गुजरात व कंधमाल, दो ऐसे हालिया उदाहरण हैं जबकि पुलिस चाहती तो जल्दी ही हिंसा बंद हो सकती थी. सभी बड़े दंगों में पुलिस की भूमिका पक्षपातपूर्ण रही है. कई मामलों में तो पुलिस ने दंगाईयों का नेतृत्व तक किया है. अगर पुलिस को और ताक़तवर बनाया गया- जैसा कि वर्तमान विधेयक करने जा रहा है- तो इसके नतीजे भयावह होंगे. असल में पुलिस नहीं, दंगा पीड़ितों को और शक्तियां दिए जाने की ज़रूरत है. नई दिल्ली में अनहद, सीएसएसएस और कई अन्य संगठनों के संयुक्त तत्वाधान में 12-13 फरवरी 2010 को इस विधेयक पर आयोजित वृहत विमर्श में विधेयक के वर्तमान प्रारूप को सिरे से ख़ारिज कर दिया गया.

इस विधेयक में प्रावधान है कि अगर किसी क्षेत्र में दंगे नियंत्रित नहीं होते तो उसे अशांत क्षेत्र घोषित किया जा सकेगा. यह तो पुलिस को असीमित शक्तियां देने जैसा ऐसा देखा गया है कि कर्फ्यू के दौरान भी उसे अल्पसंख्यक-बहुल क्षेत्रों में अधिक कड़ाई से लागू किया जाता है जबकि बहुसंख्यक मोहल्लों में यह नाममात्र के लिए लागू किया जाता है. उत्तर प्रदेश के एक पूर्व शीर्ष पुलिस अधिकारी विभूति नारायण सिंह का उपन्यास शहर में कर्फ्यू और उनकी अन्य कई रचनाएं इस स्थिति को अत्यंत सारगर्भित तरीक़े से सामने लाती हैं.

किसी क्षेत्र को उपद्रवग्रस्त या अशांत क्षेत्र घोषित करने के बाद, पुलिस को इस क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को गोली मारने का अधिकार होगा. कश्मीर और उत्तर-पूर्व के राज्यों में उपद्रवग्रस्त क्षेत्र अधिनियम को रद्द करने की मांग समय-समय पर उठती रही है. किसी क्षेत्र को अशांत घोषित करने से हिंसा पीड़ितों को कोई राहत तो मिलती नहीं है, उल्टे वे स्वयं को असहाय अनुभव करने लगते हैं. जिन लोगों को मानवाधिकारों की रक्षा की तनिक भी चिंता है, वे पुलिस को और अधिक अधिकार देने का समर्थन तब तक नहीं कर सकते जब तक कि पुलिस को उसकी कार्यवाहियों के लिए ज़िम्मेदार न बनाया जाए.

समस्या यह है कि अन्य कई क़ानूनों की तरह, इस प्रस्तावित क़ानून में भी प्रशासन, पुलिस या राजनेताओं को, दंगों पर नियंत्रण करने में असफलता के लिए, ज़िम्मेदार ठहराने का कोई प्रावधान नहीं है. मानवाधिकार कार्यकर्ता लगातार यह कहते रहे हैं कि वर्तमान क़ानूनों को ही यदि ईमानदारी और निष्पक्षता से लागू किया जाए तो वे किसी भी स्थिति को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त हैं. किसी नए क़ानून की ज़रूरत ही नहीं है. उनका कहना शायद सही भी है. हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पश्चिम बंगाल की वाम मोर्चा सरकार और बिहार की आर.जे.डी. सरकार ने वर्तमान क़ानूनों के बल पर ही अपने-अपने राज्यों में क्रमश: तीस साल और पंद्रह साल तक सांप्रदायिक हिंसा नहीं होने दी, जबकि सांप्रदायिक हिंसा के मामले में इन दोनों राज्यों का इतिहास बेदाग नहीं रहा है.

अगर राज्य सरकारें मात्र इतना करें कि घृणा फैलाने वाले या उत्तेजक भाषण देने वाले नेताओं के विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 153-ए के अंतर्गत त्वरित कार्यवाही कर ऐसे तत्वों को सीखचों के पीछे डाल दें तो इस एक क़दम से ही सांप्रदायिक हिंसा रुक जाएगी. कोई राजनेता तीन साल के लिए जेल जाना नहीं चाहेगा. लेकिन हमारे देश में ऐसा कम ही होता है. मेरा अनुभव यह है कि सन् 1961 के जबलपुर दंगों से लेकर 2008 के कंधमाल दंगों तक, एक भी राजनीतिज्ञ को सांप्रदायिक घृणा फैलाने के लिए गिरफ़्तार नहीं किया गया.

इसके अलावा, दंगा पीड़ितों को राहत व पुनर्वास तथा इन्हें मुआवज़ा देने के बारे में कोई मानक या नियम नहीं है. सब कुछ मुख्यमंत्रियों की मर्जी पर निर्भर करता है. नरेंद्र मोदी सरकार ने पूरी तरह से और आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त मकानों के लिए क्रमश: रुपये 500 व रुपये 300 के हास्यास्पद मुआवज़े की घोषणा की थी और सभी अनुरोधों को दरकिनार करते हुए, राहत शिविरों को बहुत जल्दी बंद कर दिया था. तब तक, पीड़ितों के स्थायी पुनर्वास का कोई प्रबंध नहीं हो सका था. बाद में कुछ निजी संस्थाओं ने आगे आकर राहत शिविरों को चलाने की ज़िम्मेदारी ली.

वर्तमान विधेयक में यह सुनिश्चित करने के लिए कोई प्रावधान नहीं है कि दंगों के दौरान हुई हिंसा की ठीक से जांच हो, एफ.आई.आर दर्ज़ किया जाए और दोषियों के ख़िलाफ़ मुक़दमे चलाकर उन्हें सजा दिलाई जा सके. यह शिक़ायत आम है कि पुलिस या तो एफ.आई.आर. दर्ज़ ही नहीं करती या इसमें असली दोषियों को आरोपी नहीं बनाती. जांच प्रक्रिया इतनी ढीली होती है और इतने कमज़ोर मुक़दमे दायर किए जाते हैं कि अदालतों के पास आरोपियों को बरी करने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता.

अधिकांश मामले पुलिस इस बहाने से बंद कर देती है कि आरोपियों के ख़िलाफ़ पर्याप्त सबूत नहीं हैं. गुजरात पुलिस ने इसी आधार पर सैकड़ों मामले बंद कर दिए थे जिन्हें बाद में सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर फिर से खोला गया. यद्यपि इस नए क़ानून का घोषित उद्देश्य दंगा पीड़ितों की मदद करना है, तथापि इसमें दंगों के दोषियों को सजा दिलवाने के लिए कोई प्रावधान नहीं है.

स्पष्टत: संसद में प्रस्तुत किए जाने के पूर्व, इस विधेयक में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है. अगर सरकार ये परिवर्तन स्वयं नहीं करती तो संसद सदस्यों को चाहिए कि वे बिल का सावधानीपूर्वक गहन अध्ययन करें और सरकार को बिल में ज़रूरी संशोधन करने पर मजबूर करें. बिल पर दिल्ली में आयोजित विमर्श में भाग लेने वालों ने यह महसूस किया कि सरकार द्वारा प्रस्तावित सभी 59 संशोधन अत्यंत सतही हैं.

विमर्श के प्रतिभागियों की स्पष्ट राय थी कि प्रस्तावित संशोधनों से बिल के मूल ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं आएगा. और यह भी कि सरकार ने इन सुझावों में से एक को भी संशोधनों में शामिल नहीं किया है.

विमर्श के प्रतिभागियों को तो बिल में दी गई सांप्रदायिक हिंसा की परिभाषा भी अपूर्ण व ग़लत लगी. विमर्श ने यह सिफ़ारिश भी की कि सांप्रदायिक हिंसा की परिभाषा क्या होनी चाहिए. विमर्श ने किसी ख़ास इलाक़े को सांप्रदायिक गड़बड़ी वाला क्षेत्र घोषित करने संबंधी प्रावधान पर गंभीर प्रश्न चिन्ह लगाए. कई अन्य संशोधनों के साथ विमर्श इस नतीजे पर पहुंचा कि अपराधों और गड़बड़ी वाले क्षेत्र के बीच कोई संबंध होने की बात ग़लत, ख़तरनाक और अस्वीकार्य है.

विमर्श में आम राय थी कि विभिन्न अपराधों के लिए सज़ा की अवधि को दो गुना करने के प्रावधान का न्यायालय कम ही इस्तेमाल करेंगे और इसकी जगह अन्य प्रकार की सजाओं का प्रावधान किया जाना चाहिए. इनमें चुनाव लड़ने व किसी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति पर प्रतिबंध शामिल हो सकता है. हमें यह बात ध्यान में रखना होगा कि दंगे कहीं भी हों, राजनीतिक दलों के नेताओं या कार्यकर्ताओं की उसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संलिप्तता होती है. इस तरह की सजाओं के प्रावधान से उन लोगों पर वांछित प्रभाव पड़ेगा जो सार्वजनिक पदों पर आसीन रहते हुए सांप्रदायिक हिंसा रोकने के अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते हैं.

इस तरह की सजा के प्रभावी होने का एक अच्छा उदाहरण है सन् 1990 के दशक के अंत में मुंबई हाई कोर्ट के न्यायमूर्ति सुरेश द्वारा दिया गया एक निर्णय. हाई कोर्ट ने शिवसेना नेता बाल ठाकरे को विले पार्ले क्षेत्र के शिवसेना उम्मीदवार को जिताने के लिए उत्तेजक भाषण देने का दोषी पाया था और उन्हें छ: साल तक चुनाव लड़ने, वोट देने व अपनी पार्टी का प्रचार करने के अधिकार से वंचित कर दिया था.

इस निर्णय का ठाकरे पर असर पड़ा. इसमें कोई संदेह नहीं कि अगर राजनेताओं को इस तरह की सजाएं दी जाएं, तो वे सांप्रदायिक हिंसा भड़काकर चुनाव जीतने की कोशिश नहीं करेंगे. अधिकांश राजनेता विचारधारात्मक कारणों से सांप्रदायिक हिंसा नहीं भड़काते. वे तो हिंसा इसीलिए भड़काते हैं ताकि मतदाताओं का ध्रुवीकरण कर चुनाव जीत सकें.

यहां हमारे देश में चुनाव सुधारों की आवश्यकता को एक बार फिर रेखांकित करना प्रासंगिक होगा. भारत जैसे धार्मिक, भाषाई व सांस्कृतिक विविधताओं वाले देश के लिए वर्तमान चुनाव पद्धति, जिसे हमने इंग्लैंड की नक़ल में अपना लिया है, कतई उपयुक्त नहीं है. वर्तमान में जिस भी उम्मीदवार को सबसे अधिक मत मिलते हैं वह विजयी घोषित कर दिया जाता है, फिर चाहे उसे कुल मतदाताओं के मात्र दस या पंद्रह प्रतिशत का सर्मथन ही क्यों न मिला हो. इसके स्थान पर हमें या तो समानुपातिक प्रणाली अपनानी चाहिए या यह प्रावधान किया जाना चाहिए कि विजय के लिए किसी उम्मीदवार को कम से कम 51 प्रतिशत मत प्राप्त करने होंगे. इससे राजनेताओं के लिए किसी वर्ग विशेष को अलग या नज़रअंदाज करके चुनाव जीतना मुश्किल हो जाएगा.

इस विधेयक में व्यापक संशोधन किए बग़ैर यह दंगा पीड़ितों को राहत देने के अपने उद्देश्य में सफल भी नहीं होगा.

विमर्श के प्रतिभागियों को तो बिल में दी गई सांप्रदायिक हिंसा की परिभाषा भी अपूर्ण व ग़लत लगी. विमर्श ने यह सिफ़ारिश भी की कि सांप्रदायिक हिंसा की परिभाषा क्या होनी चाहिए. विमर्श ने किसी ख़ास इलाक़े को सांप्रदायिक गड़बड़ी वाला क्षेत्र घोषित करने संबंधी प्रावधान पर गंभीर प्रश्न चिन्ह लगाए.

(लेखक मुंबई स्थित सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सोसायटी एंड सेक्युलरिज़्म के संयोजक हैं)

feedback@chauthiduniya.com

यदि आप इन शुरुआती लक्षणों की अनदेखी करते हैं तो डायबिटीज के लिए तैयार रहें. उक्त समस्याएं धीरे-धीरे गंभीर रूप धारण करने लगती हैं.

डायबिटीज : इलाज से ज़्यादा समझना ज़रूरी

रूपा चिनॉय

पश्चिम समेत अनेक देशों में डायबिटीज को ऐसी बीमारी के रूप में देखा जाता है, जो शरीर में चीनी की अधिकता के कारण होती है. जब शरीर में इंसुलिन की ज़रूरी मात्रा पैदा नहीं होती या फिर शरीर उपलब्ध इंसुलिन का सही इस्तेमाल करने में सफल नहीं होता है. इंसुलिन दरअसल एक हॉर्मोन है, जो सुगर और स्टार्च को शरीर के लिए ज़रूरी ऊर्जा में बदलता है. हालांकि डायबिटीज के मूल कारणों के बारे में अब तक स्पष्ट जानकारी नहीं मिल पाई है, लेकिन माना जाता है कि मोटापा, शारीरिक श्रम की कमी और अनुवांशिकीय कारक इसमें प्रमुख भूमिका निभाते हैं. पश्चिमी देशों में इसके इलाज के लिए संतुलित पोषक आहार, शारीरिक श्रम और तमाम तरह की दवाइयों पर ज़ोर दिया जाता है, लेकिन इससे पीड़ित लोगों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है. इस संबंध में मुंबई स्थित *हेल्थ अवेयरनेस सेंटर की न्यूट्रिशनिस्ट अंजू वेंकट* का मानना है कि हमारा शरीर डायबिटीज को अलग नज़रिए से देखता है, जिसे समझने की ज़रूरत है. पेश हैं अंजू वेंकट से हुई बातचीत के मुख्य अंश:

हमारा शरीर डायबिटीज को किस रूप में देखता है?

शरीर में 375 लाख से भी ज़्यादा कोशिकाएं होती हैं, जो विभिन्न कामों के जिए ज़िम्मेदार होती हैं. शरीर को ज़िंदा रखने के लिए ज़रूरी आधारभूत संरचना इन्हीं कोशिकाओं से मिलती है. उक्त कोशिकाएं शरीर के हर कार्य को नियंत्रित करती हैं और अलग-अलग हालात में बने रहने के क़ाबिल बनाती हैं. शरीर निर्माण में इनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य मरम्मत और संरक्षण है. उन्हें इसके लिए ऊर्जा भोजन में मौजूद पोषक तत्वों से मिलती है. जब शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तो कोशिकाएं अपना काम नहीं कर पाती हैं. कोशिकाओं के लिए ऊर्जा की उपलब्धता शरीर द्वारा पोषक तत्वों से ग्लूकोज पैदा करने की क्षमता पर निर्भर करती है. यह प्रक्रिया कोशिका स्तर पर होती है और इसमें शरीर के श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र और अंत: स्त्रावी तंत्र प्रमुख भूमिका निभाते हैं. थकावट और अपौष्टिक भोजन से शरीर को ऊर्जा की यह मात्रा उपलब्ध नहीं हो पाती. हमारी जीवनशैली में लगातार और तेज़ी से परिवर्तन हो रहे हैं, लेकिन शरीर इस चुनौती से निपटने के लिए इतनी जल्दी तैयार नहीं होता. नतीजा यह कि इसके कुछ अंगों पर दबाव बढ़ जाता है और उनके सामान्य क्रियाकलापों पर बुरा असर पड़ता है. हरी, करी एंड वरी (जल्दबाजी, अपौष्टिक भोजन और चिंता) के चलते शरीर की मूलभूत उपापचय प्रक्रिया धीमी हो जाती है. मरम्मत और संरक्षण के अलावा ज़रूरी हॉर्मोनों के उत्सर्जन के लिए भी इसे समय नहीं मिल पाता. शारीरिक असंतुलन के इन्हीं लक्षणों को पश्चिमी देशों में बीमारी की संज्ञा दी जाती है. लेकिन ख़ुद हमारा शरीर इन लक्षणों को बीमारी नहीं मानता. यह इसे एक संक्रमण काल के रूप में देखता है, जिसके दौरान वह नई चुनौतियों से निपटने के लिए लगातार संघर्ष करता रहता है. दूसरी ओर उक्त लक्षण इस बात का संकेत हैं कि हमें जीवनशैली में आने वाले बदलावों की गति धीमी कर देनी चाहिए. हम इन बदलावों के कारणों को समझें और उन्हें जीवनशैली से दूर करें. बदलाव का सबसे बड़ा कारण भी यही है कि शरीर में ऊर्जा की ज़्यादा से ज़्यादा बचत हो सके.

शरीर इन बदलावों को डायबिटीज के रूप में कैसे देखता है?

शरीर की कोशिकाओं को जब उसकी ज़रूरतों के लिए ज़रूरी ग्लूकोज उपलब्ध नहीं होता तो वह मदद की गुहार लगाता है. ज़्यादा भूख लगना, कमज़ोरी का अहसास, मीठा खाने की इच्छा आदि इसी के संकेत हैं. ऐसी हालत में चॉकलेट जैसी चीज़ें खाने से शरीर में शुगर की मात्रा अचानक बढ़ जाती है, जिससे पेशाब में जलन, प्यास लगना, ज़्यादा गुस्सा आना आदि समस्याएं पैदा होती हैं. यह सब एक सामान्य इंसान के साथ होता है, जो डायबिटीज का शिकार नहीं होता. यह शरीर के स्व-नियंत्रण का एक तरीक़ा है. जब शरीर में जंक फूड की मात्रा बढ़ जाती है तो मदद की यह गुहार और भी स्पष्ट हो जाती है. जो बताती है कि पौष्टिक पदार्थों की कमी के कारण टॉक्सिक तत्वों की मात्रा बढ़ गई है और उन्हें बाहर निकालना ज़रूरी है. सर्दी, खांसी, दर्द, स्किन एलर्जी आदि इसी के संकेत हैं, लेकिन इन्हें अक्सर छोटी-मोटी परेशानी समझ कर छोड़ दिया जाता है. यदि आप इन शुरुआती लक्षणों की अनदेखी करते हैं तो डायबिटीज के लिए तैयार रहें. उक्त समस्याएं धीरे-धीरे गंभीर रूप धारण करने लगती हैं. जैसे तलवे या उंगलियों में सुन्नपन का अहसास, पेशाब में जलन, ज़्यादा पेशाब आना, खुजलाहट आदि. बीमारी बढ़ने पर घावों के सूखने में देरी, गैंगरीन, नज़र की कमज़ोरी आदि समस्याएं गंभीर हो जाती हैं. उक्त समस्याएं बताना चाहती हैं कि कुछ गड़बड़ है. यदि आप इनसे निबटने के लिए दवाओं का सहारा लेते हैं, तो यह बीमारी के मूल कारणों से निपटने का सही तरीक़ा नहीं है.

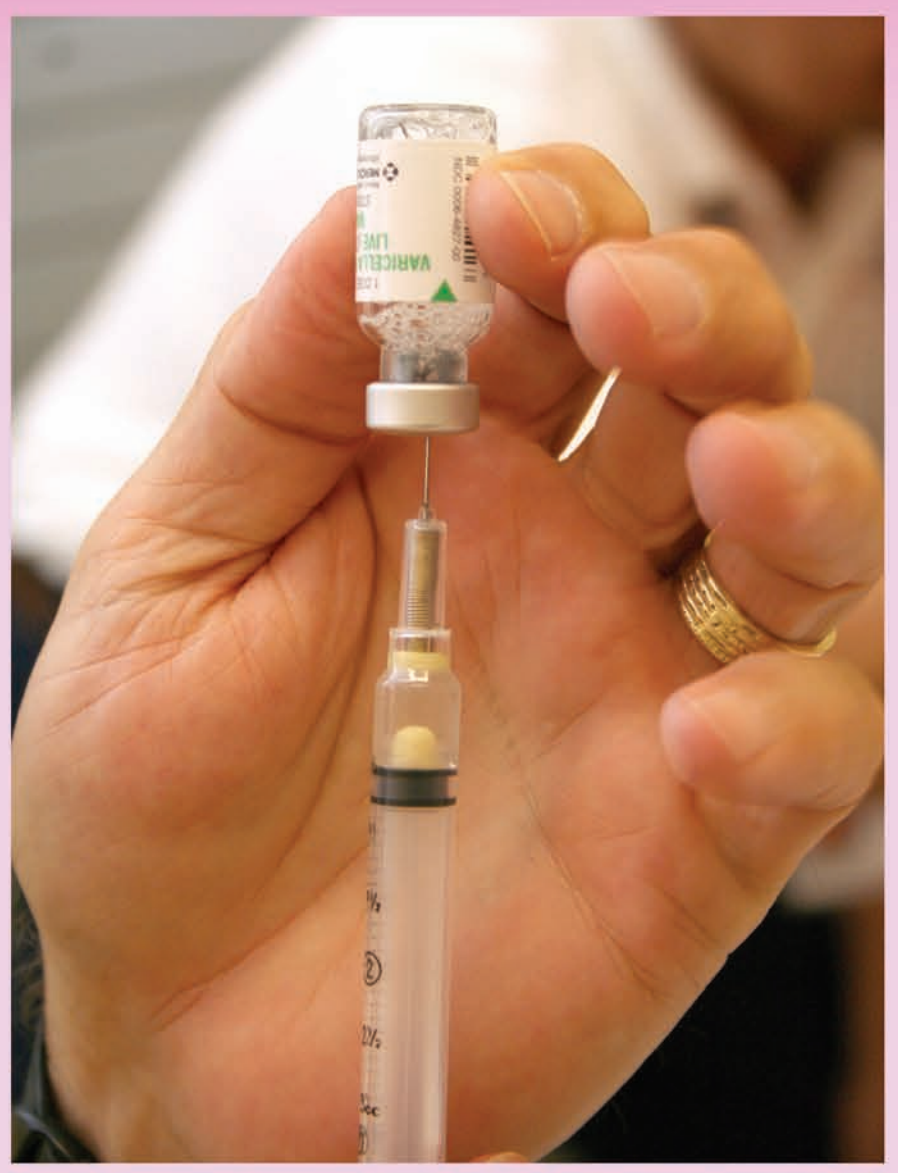

डायबिटीज के मूल कारणों से निबटने का सही तरीक़ा क्या है?

शरीर की सबसे मूलभूत ज़रूरत पौष्टिक तत्व हैं, जो ऊर्जा का स्रोत हैं. हम जो कुछ भी खाते हैं, वह शरीर के अंदर सबसे पहले ग्लूकोज में परिवर्तित होता है और फिर शरीर की ज़रूरतों के मुताबिक़ इस ग्लूकोज को विटामिन, एमिनो एसिड, फैटी एसिड, वसा आदि में तोड़ा जाता है. शरीर के अंदर यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है. इस चुनौती से निबटने में तीन बाधाएं हो सकती हैं, जैसे ग़लत भोजन के चलते शरीर में टॉक्सिक तत्वों की ज़्यादा मात्रा, भोजन को पचाने के लिए शरीर द्वारा लगाया गया ज़्यादा समय और ग़लत जीवनशैली के चलते पैदा हुई थकान. इनकी वजह से शरीर में शुगर की मात्रा में कमी या बढ़ोतरी होती है, जिससे इसका सामान्य कार्यकलाप असंतुलित हो जाता है. पाचन कार्य में शरीर को ज़्यादा समय लगने का मतलब यह है कि ग्लूकोज की ज़रूरी मात्रा उपलब्ध नहीं है. यदि इस मौक़े पर शुगर टेस्ट कराया जाए तो उसकी मात्रा कम आएगी. लेकिन हम जैसे ही कुछ खाते हैं तो शुगर का स्तर फिर बढ़ जाएगा. हम जब लगातार अपौष्टिक भोजन करते हैं तो इसे पचाने में शरीर को बार-बार ज़्यादा वक़्त लगता है. परिणामस्वरूप शुगर का स्तर कभी स्थिर नहीं हो पाता. पाचन तंत्र पर ज़्यादा दबाव के अलावा शरीर टॉक्सिक तत्वों को पचा नहीं पाता. रोटी, चावल, दूध, घी या ज़्यादा वसा वाली चीज़ों के खाने से शरीर में ग्लूटेन या म्यूकोअस की मात्रा ज़्यादा हो जाती है, जिसे आसानी से बाहर नहीं निकाला जा सकता. टॉक्सिक तत्व कोशिका की दीवारों और उसमें लगे संवेदकों को जाम कर देते हैं. संवेदक ही मस्तिष्क तक कोशिकाओं के लिए ग्लूकोज की ज़रूरी मात्रा की जानकारी पहुंचाते हैं. इनके काम न करने से मस्तिष्क तक यह संवाद नहीं पहुंचता और टॉक्सिन के चलते जाम पड़ी कोशिका की दीवारों से होकर ग्लूकोज भी अंदर नहीं पहुंच पाता. यह वैसी ही स्थिति है, जैसे आप किसी जाम पड़ी छन्नी पर चाय डाल रहे हों.

थकान के कारण बढ़ा शुगर का स्तर ज़्यादा ख़तरनाक नहीं होता, क्योंकि यह शरीर के सामान्य क्रियाकलाप का एक अंग है. शरीर में शुगर के स्तर का सीधा संबंध मस्तिष्क के इस्तेमाल से है. थकान का मतलब है कि मस्तिष्क की कोशिकाओं को ज़्यादा मेहनत करनी पड़ी है और इसके लिए उन्हें ऊर्जा की भी ज़्यादा ज़रूरत होगी. शरीर उसी अनुपात में ख़ून में ग्लूकोज के स्तर को बढ़ा देता है. यदि ऐसी हालत लगातार बनी रहती है तो शरीर को भी ग्लूकोज का स्तर ऊंचा बनाए रखना पड़ता है. तब चिंता का विषय यह नहीं होता कि शुगर के स्तर को कम कैसे किया जाए, बल्कि यह कि थकान को कैसे कम किया जाए. यदि किसी थके हुए इंसान का टेस्ट किया जाए तो यह तय है कि उसके ख़ून में शुगर की मात्रा ज़्यादा होगी. लेकिन थकावट कम होते ही शुगर का स्तर स्थिर हो जाता है. गेहूं, दूध से बनी चीजें या जंकफूड खाकर हम अपने शरीर की कोशिकाओं की दीवारों को ख़ुद जाम करते हैं, जिससे पाचन में ज़्यादा समय लगता है. यह शुगर का स्तर बढ़ने का सबसे बड़ा कारण है.

पश्चिमी देशों में इलाज का क्या तरीक़ा है?

पश्चिमी देशों में डायबिटीज के इलाज में इस्तेमाल की जाने वाली दवाइयां बीमारी की जड़ पर चोट नहीं करती हैं. संभव है कि ब्लड रिपोर्ट में सब कुछ सही दिखे, लेकिन कोशिका के अंदर शुगर की ज़्यादा मात्रा से पड़ने वाले असर के आकलन के लिए कोई टेस्ट नहीं है. हमारा लक्ष्य यह सुनिश्चित करना होता है कि शरीर की कोशिकाओं या ख़ून को शुगर की ज़्यादा मात्रा न मिले. जब शरीर पेशाब के रास्ते ग़ैर ज़रूरी शुगर बाहर निकालने की कोशिश करता है तो दवाइयों द्वारा उसके इस प्रयास को दबा दिया जाता है. एक बार डायबिटीज हो जाए तो आप हमेशा के लिए इसके शिकार होकर रह जाते हैं. यदि आप नियमित रूप से ज़्यादा कार्बोहाइड्रेट वाली चीजें खा रहे हैं जैसे रोटी, चावल, पास्ता आदि तो शरीर में शुगर की ज़्यादा मात्रा पैदा होती है, जो मैटाबॉलिक प्रॉसेस का हिस्सा नहीं बनती. वह सीधे ख़ून में मिल जाती है. शुगर के स्तर में इस उछाल से शरीर परेशान हो जाता है. ऐसे में कार्बोहाइड्रेट्स का ग्लाइसेमिक इंडेक्स ऊंचा हो जाता है, जिससे शुगर के स्तर में अचानक वृद्धि हो जाती है.

ऐसी चीज़ें ज़्यादा खानी चाहिए, जिनका ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम हो, जो धीरे-धीरे शरीर में घुलकर ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाती हैं. उदाहरण के लिए ताज़ी सब्जियों या दालों से निकलने वाला शुगर ख़ून में धीरे-धीरे मिलता है. ऐसी चीज़ें खाने के दोहरे फ़ायदे हैं. एक तो वे शरीर में आसानी से घुल जाती हैं और दूसरे यह कि इनके पचने में ज़्यादा समय नहीं लगता. डायबिटीज के मरीज को खाने में ज़्यादा समय लेकर पचने वाली कार्बोहाइड्रेट नियमित रूप से दी जाती हैं. परिणाम यह होता है कि उसके शुगर का स्तर लगातार बढ़ता जाता है. छह महीने तक नियमित एक्सरसाइज और यही भोजन करने के बाद भी जब उसके शरीर में शुगर का स्तर कम नहीं होता तथा दवा की मात्रा बढ़ा दी जाती है तो उसे आश्चर्य होता है.

ऐसे लोगों का क्या अनुभव रहा है, जिन्होंने स्वास्थ्य के प्रति इस नज़रिए को अपनाया और जीवनशैली में इसके अनुरूप बदलाव किए?

कई ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें मरीज डायबिटीज और हाई ब्लड प्रेशर की शिक़ायत लेकर आए. हमारी सलाह के मुताबिक़ तीन महीने तक केवल फल और सब्जियां खाने के बाद उनकी हालत में आश्चर्यजनक सुधार हुआ. शरीर को ऐसा भोजन पचाने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगता और वह मरम्मत और पुनर्निर्माण जैसे काम कर सकता है. कई लोग ऐसे भी हैं, जिन्हें अब दवा भी नहीं लेनी पड़ती. जीवनशैली में बदलाव, नियमित एक्सरसाइज और योग की मदद से उनका शरीर अब इसके लिए तैयार हो रहा है कि वे दोबारा इस बीमारी के शिकार न हों.

पिछले 15 सालों से डायबिटीज के मरीजों के साथ रहते हुए हमने एक नई चीज देखी है. पहले लोग एक्सरसाइज और भोजन में बदलाव की मदद से इस बीमारी को ख़ुद नियंत्रित करने में सफल रहते थे. कम ही लोगों को इंसुलिन की ज़रूरत पड़ती थी, लेकिन अब लोग बीमारी का पता चलने के दो साल के अंदर ही इंसुलिन लेने लगे हैं. भविष्य के लिहाज़ से यह अग्नाशय के लिए ख़तरनाक हो सकता है. यह इस बात की ओर इशारा है कि तेज़ी से बदलती जीवनशैली, भोजन के स्वरूप और दवाओं के इस्तेमाल से शरीर की आंतरिक प्रतिरोधी क्षमता लगातार कम होती जा रही है.

feedback@chauthiduniya.com

स्वस्थ रहने के लिए आदर्श डाइट

हेल्थ अवेयरनेस सेंटर ऐसे पोषण की सलाह देता है, जिससे शरीर ख़ुद अपनी सफाई करने में सक्षम हो. खाने में यदि ताज़ा सलाद जैसी फाइबर चीज़ें शामिल हों तो पचने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगता. ऐसा खाना शरीर में आसानी से घुल-मिल जाता है और पचने के बाद शुगर की अनावश्यक मात्रा भी पैदा नहीं होती. चावल और रोटी जैसे जटिल कार्बोहाइड्रेट को एक साथ कभी नहीं खाना चाहिए और दिन में एक बार ही खाना चाहिए. रात के खाने में दोनों में से एक भी न हो तो अच्छा है, ताकि शुगर की मात्रा कम बनी रहे. एक औसत इंसान के लिए नाश्ते में कम से कम पांच अलग-अलग ताजा फल, ताजा सलाद, पकी हुई सब्जियां, बिना नमक की अंकुरित चीजें शरीर की ऊर्जा ज़रूरतों के लिहाज़ से बेहद महत्वपूर्ण हैं. आसानी से पचने और शरीर में घुल जाने वाली इन चीजों में मौजूद पोषक तत्व स्मॉल इंटेस्टाइन में जमा रहता है और शरीर की ज़रूरत के हिसाब से उसका इस्तेमाल होता है. यदि आप इन चीज़ों की पर्याप्त मात्रा नियमित रूप से सही समय पर खाते हैं तो शरीर में पोषक तत्वों का भंडार लगातार बढ़ता और स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है. यदि कभी मजबूरी में दूसरी चीज़ें खानी पड़ें तो किसी भी हालत में ज़्यादा न खाएं. शरीर पर इसके असर को लाइम शॉट्स अर्थात पानी और लेमन जूस की मदद से कम किया जा सकता है. दूध, रिफाइंड आटा, तेल, चीनी, चाय, कॉफी जैसी चीज़ों से बिल्कुल दूर रहें, क्योंकि इनसे शरीर में एसिडिक और टॉक्सिक तत्वों की मात्रा बढ़ती है. फलों पर कोई रोक नहीं है. फलों में मौजूद शुगर में फ्रूक्टोज पाया जाता है, जो रिफाइंड शुगर में मौजूद सुक्रोज से अलग होता है. सुक्रोज की तरह फ्रूक्टोज सीधे ख़ून में नहीं मिलता, बल्कि मैटाबॉलिक प्रॉसेस का एक हिस्सा बनता है. शुगर को ग्लूकोज में परिवर्तित करने के लिए इंसुलिन की ज़रूरत होती है, लेकिन फ्रूक्टोज को ग्लूकोज में बदलने के लिए इंसुलिन ज़रूरी नहीं है. इससे अग्नाशय पर पड़ने वाले दबाव में कमी आती है. डायबिटीज के प्रत्येक मरीज की भोजन संबंधी ज़रूरतें अलग-अलग होती हैं और इसका ध्यान रखना ज़रूरी है.

मशहूर उद्योगपति एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री कमल मोरारका शेखावाटी के ही नवलगढ़ क्षेत्र के रहने वाले हैं. इनकी पुश्तैनी हवेली मोरारका हवेली की दीवारों पर भी वक़्त की गर्द चढ़ने लगी थी.

शेखावाटी में विकास के पंद्रह साल

रूबी अरुण

शेखावाटी यानी महाराज महाराव शेखा जी और उनके वंशजों की वीरभूमि. लक्ष्मी पुत्रों और सरस्वती के साधकों की स्थली. शेखावाटी का नाम लेते ही उसका गौरवशाली ऐतिहासिक अतीत साकार हो उठता है. कला, संस्कृति, शिक्षा एवं साहित्य का ओज शेखावाटी की रग–रग में भरा है. ख़ासकर यहां की शानदार हवेलियां और उनमें बने भित्ति चित्रों को देखकर हर कोई मंत्रमुग्ध सा हो जाता है. हालांकि वर्ष 1996 से पहले हालात इतने ख़ुशनुमा नहीं थे. रोजी–रोटी और व्यवसाय के विस्तार के मक़सद से यहां के बड़े–बड़े धनपति मुंबई जैसे शहरों में जाकर बस चुके थे. लिहाज़ा उनकी हवेलियां वीरान सी हो गई थीं. शहर तरक़्क़ी तो कर रहा था, पर उसके गली–कूचों में वह रौनक नहीं थी, जो आज नज़र आती है. मशहूर उद्योगपति एवं पूर्व केंद्रीय मंत्री कमल मोरारका शेखावाटी के ही नवलगढ़ क्षेत्र के रहने वाले हैं. इनकी पुश्तैनी हवेली मोरारका हवेली की दीवारों पर भी वक़्त की गर्द चढ़ने लगी थी. उद्योग–धंधों की वजह से इनकी रिहाइश भी मुंबई में ही थी, लेकिन अपने पैतृक स्थान से कमल मोरारका का ज़हनी लगाव इतना संजीदा था कि वहां कुछ बेहतर करने की छटपटाहट हमेशा इनके मन को बेचैन करती थी. लिहाज़ा कमल मोरारका ने अपने पिता एम आर मोरारका के नाम से एक स्वयंसेवी संस्था बनाई, मोरारका फाउंडेशन. वर्ष 1996 से मोरारका फाउंडेशन ने शेखावाटी में शेखावाटी उत्सव के नाम से वार्षिक सांस्कृतिक उत्सव करना शुरू किया. इस उत्सव की सबसे बड़ी कोशिश यह रही कि इसके माध्यम से लोगों के बीच हवेलियों को संरक्षित किए जाने का संदेश दिया गया. शेखावाटी उत्सव में मोरारका फाउंडेशन ने उन तमाम संस्कृतियों–कलाओं की विधाओं को शामिल किया, जो इस इलाक़े में पर्यटन की संभावना बना और बढ़ा सकती थीं. जो बेशक़ीमती हवेलियां देखभाल के अभाव में खंडहर में तब्दील होती जा रही थीं, उनके मालिकों से फाउंडेशन ने सामंजस्य बनाना शुरू किया. और, फाउंडेशन ने इसका ज़रिया बनाया मोरारका हवेली को. हवेली की साज–संभाल और उसके अन्य भित्ति चित्रों का रंग–रोगन कर उसे नया रूप दिया गया. धीरे–धीरे मोरारका हवेली के अद्‌भुत भित्ति चित्रों की ख्याति बढ़ती गई और न सिर्फ़ भारत, बल्कि विदेशों से भी पर्यटकों का तांता लगने लगा. मोरारका फाउंडेशन का यह प्रयास इतना प्रेरणादायक रहा कि दूसरे हवेली मालिकों ने भी अपनी विरासत को संभालना–सहेजना शुरू कर दिया. नतीज़तन आज से 15 वर्षों पहले तक नवलगढ़ की जिन तमाम हवेलियों में मकड़ी के जाले और ताले लटके पड़े थे, आज वे दर्शकों–पर्यटकों से गुलज़ार हैं. पर्यटकों के आने से शेखावाटी के लोगों को रोज़गार भी मिला. धीरे–धीरे आर्थिक संपन्नता बढ़ने लगी और समृद्धि की यह ख़ुशहाली अब यहां के लोगों के चेहरे पर साफ़ नज़र आती है. पर्यटन विकास की दर 11 फ़ीसदी सालाना हो चुकी है. शेखावाटी उत्सव शुरू होने से आज तक 15 वर्षों के सफर में शेखावाटी के बीस क़स्बों की पांच हज़ार से अधिक हवेलियां पर्यटन के क्षेत्र में ओपन आर्ट गैलरी का रूप ले चुकी हैं. मोरारका फाउंडेशन के अध्यक्ष कमल मोरारका की हवेली राज्य की धरोहरों में अपना स्थान बना चुकी है. आज से 15 साल पहले शेखावाटी में गिने–चुने होटल थे, लेकिन शेखावाटी उत्सव की बदौलत मिलने वाली शोहरत से आज यहां के होटलों के कमरों की संख्या आठ हज़ार से ज़्यादा हो चुकी है.

शेखावाटी उत्सव में ग्रामीण लोक कला और संस्कृति से जुड़ी तमाम गतिविधियां आयोजित की जाती हैं, जिससे इस इलाक़े में रहने वाले युवक–युवतियों की छुपी प्रतिभा निखर सके. आर्ट क्रॉफ्ट, ग्रामीण खेल जैसे मटका दौड़, रस्साकसी, हरदड़ा, राउंडर, बल्ला, कालबेलिया नृत्य, कवि सम्मेलन आतिशबाज़ी इत्यादि का आयोजन पूरे शेखावाटी इलाक़े में एक रोमांच सा भर देता है. नवलगढ़, फतेहपुर, अलसीसर, भलसीसर, लक्ष्मणगढ़ एवं भंडावा आदि की हवेलियों और भित्ति चित्रों की प्रदर्शनी, मेहंदी प्रतियोगिता आदि में स्कूली छात्र–छात्राएं बढ़–चढ़कर हिस्सा लेते हैं तथा अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते हैं. ये सारी गतिविधियां शेखावाटी क्षेत्र के विकास में अभिन्न योगदान दे रही हैं. शेखावाटी उत्सव के 15 सालों के सफर ने इस क्षेत्र को विदेशों में भी अभूतपूर्व पहचान दी है. विदेशी पर्यटकों के आने से यहां के व्यवसायियों की आमदनी में ख़ासा इज़ाफ़ा हुआ है. पहाड़ों में बना जीर्णमाता मंदिर, भाकंबरी देवी का मंदिर, खाटू में श्याम का मंदिर, सालासर में हनुमान जी का मंदिर वग़ैरह भी देशी–विदेशी पर्यटकों के आकर्षण के केंद्र बन चुके हैं. लेकिन तक़लीफ़ की बात यह है कि राज्य सरकार या पर्यटन मंत्रालय की ओर से ऐसी कोई सार्थक पहल नहीं हो पा रही है, जिससे यह क्षेत्र राष्ट्रीय धरोहरों में शामिल हो सके. सिंधु घाटी की सभ्यता के अवशेषों एवं विभिन्न संस्कृतियों के मिलन, विकास और पतन की गौरव गाथाओं को अपने दामन में छुपाए शेखावाटी का इलाक़ा आज भी सरकारी प्रयासों की बाट जोह रहा है. हालांकि मोरारका फाउंडेशन द्वारा आयोजित शेखावाटी उत्सव में राज्य पर्यटन मंत्रालय अपना सहयोग ज़रूर देता है, पर वह बहुत कम होता है. सरकार को चाहिए कि वह भी मोरारका फाउंडेशन की तरह अथक और अनवरत प्रयास करे, ताकि शेखावाटी इलाक़े की पहचान विश्व पटल पर बन सके.

ruby@chauthiduniya.com

यूं तय हुआ तरक़्क़ी का रास्ता

शेखावाटी की तरक़्क़ी के लिए मोरारका फाउंडेशन ने और भी कई बेहद सराहनीय काम किए हैं. ग्रामीण ग़रीब महिलाओं की आर्थिक उन्नति के लिए स्वयं सहायता समूह बनाकर उन्हें बैंकों से क़र्ज़ दिलाने और रोज़गारोन्मुखी प्रशिक्षण देने आदि का महती काम फाउंडेशन ने किया है. कम्युनिटी किचन योजना के तहत ग्रामीण महिलाओं को गैस कनेक्शन दिए जा रहे हैं, ताकि उन्हें दमघोंटू धुएं से मुक्ति मिल सके. पिछले 15 वर्षों से मेधावी छात्र-छात्राओं को फीस एवं किताब आदि का सहयोग कर उनकी पढ़ाई में योगदान दिया जा रहा है. बिजली कटौती की समस्या से निपटने के लिए सोलर लालटेन योजना शुरू की गई है. अक्षय ऊर्जा के पैनल से दिन में सूर्य की रोशनी के मार्फ़त सौर ऊर्जा लालटेन को चार्ज किया जाता है. यह लालटेन पांच-छह घंटे तक रोशनी करने में सक्षम है. शेखावाटी इलाक़े को गंदगी और प्रदूषण से मुक्त करने का भी अभिनव प्रयास फाउंडेशन ने किया है. फाउंडेशन शहर के कचरे को वर्मीकंपोस्ट विधि से रिसाइकल कर उसे दोबारा उपयोग के लायक़ बनाता है. फाउंडेशन ने वेस्ट मैनेजमेंट के क्षेत्र में एक क़दम आगे बढ़ते हुए वर्षा के जल को संग्रहित कर उसे फिर से प्रयोग में लाने लायक़ बनाने की प्रक्रिया भी शुरू कर दी है. फाउंडेशन के बेहतरीन काम को देखते हुए उसे राजस्थान सरकार के शहरी विभाग ने कचरा प्रबंधन, दूषित जल को दोबारा इस्तेमाल करने और वर्षा के पानी को फिर से इस्तेमाल करने के लिए अधिकृत कर दिया है.

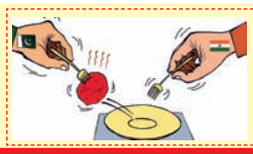

अलगाववादी नेताओं के साथ बशीर की बातचीत का कार्यक्रम पहले से ही तय था और इसमें भारत सरकार की भी सहमति थी.

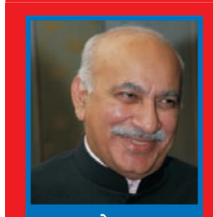

एम जे अकबर

भारत लक्ष्य से भटक गया

लंबी जद्दोजहद के बाद हैदराबाद हाउस में भारत और पाकिस्तान के बीच फिर से बातचीत की शुरुआत हुई, लेकिन हैरत की बात है कि बातचीत के लिए दोनों देशों के विदेश सचिव इकट्ठा हुए. उसके एक दिन पहले ही भारत अपने लक्ष्य से भटक गया. पाकिस्तान के विदेश सचिव भारत आए तो उनके एजेंडे में बातचीत के दो मुद्दे थे. भारत सरकार के साथ बातचीत करना उनके एजेंडे का केवल आधा हिस्सा ही था. बाक़ी आधा जो शायद पाकिस्तान के नज़रिए से ज़्यादा महत्वपूर्ण था, वह था कश्मीर के अलगाववादी नेताओं के साथ इस्लामाबाद के संपर्क और बातचीत को फिर से शुरू करना. बशीर का इरादा उमर अब्दुल्ला, फारुख़ अब्दुल्ला, मुफ्ती मोहम्मद सईद, महबूबा मुफ्ती या गुलाम नबी आज़ाद जैसे नेताओं से बातचीत करना नहीं था, जो कश्मीर में लोकतांत्रिक प्रक्रिया का एक हिस्सा हैं और जिनकी पार्टियों ने विधानसभा चुनावों में काफ़ी सीटें जीती हैं. बशीर तो वह सुनना चाहते थे, जो सैयद शाह गिलानी ने कहा कि कश्मीर घाटी में अशांति का दौर ख़त्म नहीं हुआ है. बशीर ने गिलानी को आश्वस्त किया कि पाकिस्तान भारत के नक़्शे में बदलाव की अपनी कोशिशों को अभी बंद नहीं कर रहा.

अलगाववादी नेताओं के साथ बशीर की बातचीत का कार्यक्रम पहले से ही तय था और इसमें भारत सरकार की भी सहमति थी. यदि सरकार ने उन्हें रोकने की कोशिश की होती तो गिलानी और अन्य कश्मीरी नेता श्रीनगर से दिल्ली नहीं पहुंच सकते थे. यह सही है कि हमने पहले भी ऐसी बातचीत के लिए सहमति दी है, लेकिन यह तर्क यहां लागू नहीं होता.

इससे पहले जब दोनों देशों के बीच बातचीत हुई थी तो मुंबई में आतंकी हमले के बाद भारत ने अचानक ही अपने पैर पीछे खींच लिए थे. सरकार ने बातचीत दोबारा शुरू करने का प्रस्ताव दिया, लेकिन इसके साथ यह शर्त थी कि आतंक के मुद्दे पर सबसे पहले विचार होगा. कश्मीर या अन्य मुद्दों पर तभी बातचीत होगी, जब पाकिस्तान हाफिज सईद जैसे घोषित आतंकियों के ख़िलाफ़ अपनी कार्रवाई से भारत को संतुष्ट करने में सफल होगा.

यदि हमारा लक्ष्य यही था तो फिर हमने पाकिस्तान और हुर्रियत नेताओं के बीच बातचीत की अनुमति कैसे दे दी? हम पाकिस्तान को स्पष्ट शब्दों में बता सकते थे कि भारतीय सरजमीं पर कश्मीरी नेताओं से उसकी बातचीत अगली बार हो सकती है, लेकिन 25 फरवरी को यह संभव नहीं है, क्योंकि इस बार के एजेंडे में आतंकवाद ही सबसे बड़ा मुद्दा है. लेकिन, हमने ऐसा नहीं किया और पाकिस्तान ने यह समझा कि परिस्थितियां पहले जैसी ही हैं. साथ ही यह

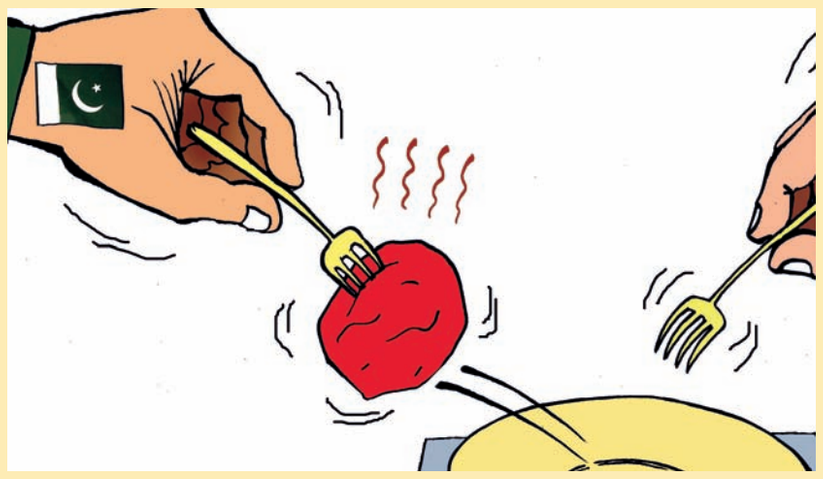

भी कि भारत के लिए आतंकवाद का मुद्दा एक बहाना भर है, जिससे लोगों को फुसलाया जा सके. पाकिस्तान ने हमारी इस चूक का भरपूर फ़ायदा उठाया. मीडियाकर्मियों से बातचीत में सलमान बशीर ने जोर देकर कहा कि कश्मीर के मसले पर खुलकर बातचीत हुई है और यह भी कि भारत अंतरराष्ट्रीय दबाव के चलते पाकिस्तान के साथ बातचीत को राजी हुआ है. बशीर के बयान और उनके रवैये से यह पानी की तरह साफ़ था कि पाकिस्तान इसे अपनी कूटनीतिक विजय के रूप में देख रहा है.

ख़ैर, अब शायद वह समय आ गया है, जब भारत भी पाकिस्तान से ऐसे ही व्यवहार की अपेक्षा करे. कितना अच्छा हो कि अगली बार जब निरूपमा राव बातचीत के लिए (उन्हें इसके लिए आमंत्रण मिला है) इस्लामाबाद जाएं तो बलूचिस्तान में हिंसक अभियान चलाने वाले नेताओं से मिलने पर ज़ोर दें, बशर्ते ऐसे नेता तब तक ज़िंदा बचे रहें. यहां एक बात पूरी तरह स्पष्ट होनी चाहिए कि भारत आकर यदि निरूपमा राव के साथ सलमान बशीर की बातचीत नहीं हो पाती तो भी उनकी सेहत पर कुछ ख़ास असर नहीं पड़ता, लेकिन भारत आकर यदि वह अलगाववादी हुर्रियत नेताओं से नहीं मिलते तो संभव है, वापसी में उन्हें पाकिस्तान के बजाय किसी अन्य देश की विमान यात्रा करनी पड़ती. भारत के प्रति पाकिस्तान की नीतियों के केंद्र में केवल कश्मीर है और कुछ नहीं. भारत में लोग और शायद भारत सरकार भी यह नहीं समझ रही है कि मुंबई कांड के बाद पाकिस्तान का रवैया और कड़ा हुआ है. समझौते के क़रीब पहुंचने की परवेज मुशर्रफ की दलीलें अब केवल एक शोर बनकर रह गई हैं, क्योंकि इसका कहीं भी कुछ लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है.

मुंबई कांड कोई ख़ास अहमियत नहीं रखता, लेकिन यह भारत पर दोषारोपण का एक हथियार है. चूंकि भारत ने कश्मीर पर अनैतिक रूप से क़ब्ज़ा जमाया है तो उसे ऐसी वारदातों को झेलना होगा. इस लिहाज़ से देखें तो हाफिज सईद पाकिस्तान के लिए एक बिन मांगी मुराद की तरह है, जो कश्मीर मुद्दे को फिर से सतह पर लाने में कामयाब हुआ. कोई आश्चर्य नहीं, यदि भारत दौरे पर बशीर बार–बार कोर इश्यू की बात पर जोर दे रहे थे.

भारत और पाकिस्तान इस बात पर तो एकमत हो सकते हैं कि आतंकवाद एक बड़ा ख़तरा है, लेकिन आतंकवाद की परिभाषा को लेकर दोनों देशों की राय बिल्कुल अलग है. इसमें कोई संदेह नहीं कि सलमान बशीर आतंकवाद को बड़ा ख़तरा मान लेंगे, इसके शिकार हुए अपने नागरिकों की हालत पर आंसू भी बहाएंगे, लेकिन उन्हें यह कौन समझाए कि पाकिस्तान में होने वाली मौतों का ज़िम्मेदार तालिबान है, जबकि भारत में आतंकी वारदातों को अंजाम देने वाले पाकिस्तान के स्वतंत्रता सेनानी हैं. हाफिज सईद ने जब लाहौर की एक रैली में अपने हज़ारों हथियारबंद समर्थकों को यह संदेश दिया कि एक मुंबई कांड से कुछ नहीं होने वाला तो बशीर उसे सईद का लोकतांत्रिक अधिकार मानते हैं. लेकिन यक़ीन मानिए, यही बात यदि किसी तालिबानी कमांडर ने पेशावर में कही होती तो पाकिस्तानी सेना उस पर टूट पड़ी होती.

निरूपमा राव बातचीत के दौरान तो अपनी बात पर अडिग रहीं, लेकिन उन्होंने एक बड़ी ग़लती कर दी. भारत–पाकिस्तान के बीच कूटनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू उनकी निगाहों से ओझल हो गया, जब उन्होंने बशीर को मीडियाकर्मियों से बातचीत करने का मौक़ा अपने बाद दिया. बातचीत के बारे में मीडिया को जानकारी देने की उनकी जल्दबाजी समझ से परे है. आख़िर राव को यहीं रहना था, जबकि बशीर को पाकिस्तान लौटना था. वह चाहतीं तो थोड़ी देर प्रतीक्षा कर सकती थीं. सच तो यह है कि हम लक्ष्य से दोबारा भटक गए, बातचीत से पहले और उसके बाद भी.

feedback@chauthiduniya.com

प्रजातंत्र, तानाशाही और अन्न स्वराज

वंदना शिवा

बीटी–बैगन के मुद्दे पर भारत में छिड़ी बहस ने यह स्पष्ट कर दिया है कि देश का कृषक और उपभोक्ता वर्ग जीएम फूड्स के पक्ष में नहीं है. सेंटर फॉर एंवायरमेंट एजूकेशन, जिसने पर्यावरण मंत्रालय की ओर से इस बहस का आयोजन किया, के अतुल पांड्या ने इससे संबंधित रिपोर्ट पेश की. बहस में देश भर के किसानों ने भाग लिया और अपने अनुभव बांटे. 9 फरवरी, 2010 को पर्यावरण मंत्री ने बीटी–बैगन पर फ़िलहाल रोक की घोषणा की. केरल, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़, गुजरात, मिजोरम और तमिलनाडु की सरकारों ने भी यह स्पष्ट कर दिया कि वे अपने राज्यों में बीटी–बैगन की अनुमति नहीं देंगी.

मॉन्सेंटो एवं उसके जैसे अन्य बड़ी व्यवसायिक संस्थाओं द्वारा जीएम (जेनेटिकली मोडिफायड या आनुवांशिक रूप से परिवर्द्धित) बीजों एवं खाद्य पदार्थों के व्यवसायीकरण की कोशिशों के बाद दुनिया भर में लोग और सरकारें अपने खाद्यान्न और कृषि को जीएम से मुक्त रखने के लिए संगठित होने लगे हैं. यूरोप महाद्वीप में पांच देश और 49 इलाक़े ऐसे हैं, जो जीएमओ से पूरी तरह मुक्त हैं.मारिया ग्रेजिया ममूसिनी, जो तस्कनी क्षेत्र में एग्रीकल्चरल रिसर्च एजेंसी की मुखिया हैं और जिन्होंने यूरोप में जीएम मुक्त क्षेत्रों का संगठन तैयार किया है, को सम्मेलन में शामिल होने के लिए वीजा नहीं मिला, लेकिन उनकी अनुपस्थिति में भी उनके विचारों को सम्मेलन में पेश किया गया.

यूरोप में जीएमओ मुक्त आंदोलन के नेता बेनी हरलिन ने भी अपनी कामयाबी के अनुभव बांटे. उन्होंने बताया कि जीएमओ मुक्त होने का मतलब कॉरपोरेट घरानों के एकाधिकार और असुरक्षित खाद्यान्न से मुक्त होना है. जीएमओ मुक्त आंदोलनों की शुरुआत से वास्तविक और रहने लायक़ लोकतांत्रिक व्यवस्था का विकास हो रहा है.

जीएमओ पर इस विवाद का एक पक्ष विज्ञान से भी ताल्लुक रखता है. अहम सवाल यह है कि जैविक सुरक्षा और खाद्य सुरक्षा के लिए कौन सा विज्ञान अपनाया जाना चाहिए. जीएमओ को इस तर्क के आधार पर थोपने की कोशिश की जा रही है कि आनुवांशिक रूप से परिवर्द्धित बीजों के इस्तेमाल से उत्पादन ज़्यादा होता है और ज़्यादा सुरक्षित भी है. लेकिन आईसीएआरडीए के प्रोफेसर सेसारेली ने पार्टिसिपेटरी ब्रीडिंग को इसका एक बेहतर विकल्प बताया. आंध्र प्रदेश सरकार के लिए एक ग़रीबी निवारण परियोजना का संचालन करने वाले टी विजय कुमार ने अपने अनुभवों के आधार पर यह साबित किया कि खाद्य सुरक्षा के लिए न तो जीएम फ़सलों की ज़रूरत है और न ही कीटनाशकों की.

नेटवर्क ऑफ इंडिपेंडेंट साइंटिस्ट ऑफ यूरोप के सदस्य मार्सिलो बुयाटी को भी सम्मेलन में भाग लेने के लिए वीज़ा तक नहीं दिया गया, जबकि यूरोप के कई देशों और इलाक़ों में जीएम फूड्स पर लगा प्रतिबंध इसी संगठन के शोधों का परिणाम है. बुयाटी ने अपने अनुभवों के आधार पर यह संदेश दिया है कि आनुवांशिकी इंजीनियरिंग अविश्वसनीय और जोख़िम भरी तकनीक है.

मॉन्सेंटो और जीएमओ के ख़िलाफ़ अनेक अदालती कार्यवाहियों का नेतृत्व करने वाले सेंटर फॉर फूड सेफ्टी की डेबी बार्कर ने कहा कि एक दशक तक अमेरिका में जीएम फूड्स के उत्पादन के बाद इससे जुड़ी भ्रांतियों से अब पर्दा उठ चुका है. यह स्पष्ट हो चुका है कि इससे उत्पादकता में वृद्धि नहीं होती है. कीटनाशकों के इस्तेमाल में बढ़ोत्तरी हुई है और बीजों को सुरक्षित रख उसे दोबारा बोने का अधिकार भी अमेरिकी किसान खो चुके हैं.

जीएम फूड्स पर यूरोप में लगे प्रतिबंध के बाद मॉन्सेंटो ने 13 फरवरी, 2010 को डब्ल्यूटीओ में यूरोप के ख़िलाफ़ कार्रवाई के लिए अमेरिका का सहारा लिया. यूरोप ने जीएम फूड्स पर चल रहे शोधों के परिणाम आने तक इसके इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी थी. इसके प्रतिकार के लिए हमने ग्लोबल सिटिजंस जीएमओ चैलेंज को संगठित किया, वह भी डब्ल्यूटीओ को यह बताने के लिए कि सुरक्षित खाद्यान्न और अपने फूड सिस्टम को जीएम से मुक्त रखने के मामले में हम स्वतंत्र हैं. हांगकांग में हुई डब्ल्यूटीओ की मंत्रिस्तरीय बैठक के दौरान वंदना शिवा, जोस बोवे एवं सुसान जॉर्ज ने सौ से भी ज़्यादा देशों और विश्व भर के 740 से भी ज़्यादा संस्थाओं के एक लाख पैंतीस हज़ार हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रतिवेदन सौंपा था. इसी का परिणाम था कि जीएमओ पर प्रतिबंध के बावजूद डब्ल्यूटीओ यूरोपीय देशों के ख़िलाफ़ कोई क़दम उठाने में नाकाम रहा.

आज भारत में बीटी–बैगन पर लगे प्रतिबंध के बाद जैव प्रौद्योगिकी से जुड़ी कंपनियों की ऐसी ही प्रतिक्रिया देखने को मिल रही है. जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक नए क़ानून की मांग करते हुए बायोटेक्नोलॉजी रेगुलेटरी अथॉरिटी ऑफ इंडिया (बीआरएआई) के गठन के लिए भी आवाज़ें उठ रही हैं. इसका उद्देश्य एक ही है, नियामक कार्यों को पर्यावरण मंत्रालय के बजाय उसे बायोटेक्नोलॉजी डिपार्टमेंट को सौंपना, जो देश में आनुवांशिक इंजीनियरिंग के विकास के लिए धन की व्यवस्था करता है. पर्यावरण मंत्रालय आम लोगों के स्वास्थ्य और पर्यावरण की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए जैविक सुरक्षा पर बल देता है. लेकिन यदि बीआरएआई का गठन होता है तो जीएमओ के उपयोग को अनुमति देने की प्रक्रिया में तेज़ी आएगी.

आरोप है कि बायोटेक्नोलॉजी उद्योग को नया स्वरूप देने की कोशिश में बीआरएआई आम लोगों की आवाज़ को दबाना चाहता है. इस प्रस्तावित क़ानून की धारा 63 में कहा गया है, किसी साक्ष्य या वैज्ञानिक शोध के बिना यदि कोई शेड्यूल 1 के अंतर्गत पार्ट–1, पार्ट–2 या पार्ट–3 में उल्लेखित संगठनों या उनके उत्पादों की सुरक्षा को लेकर आम लोगों में भ्रम फैलाने की कोशिश करता है तो उसे कम से कम छह महीनों या अधिकतम एक साल तक के कारावास और दो लाख रुपये तक के आर्थिक दंड या दोनों सजाएं हो सकती हैं.

डॉ. वंदना कहती हैं कि नागरिक स्वतंत्रता के लिहाज़ से बीआरएआई एक फासीवादी क़ानून है. बायोटेक इंडस्ट्री के इस फासीवादी रवैये ने अरपाद पुट्जई और पुष्पा भार्गव जैसे प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों को ख़ास तौर पर निशाने पर लिया है. दरअसल, बायोटेक इंडस्ट्री चाहती है कि उसके द्वारा प्रचारित किए जाने वाले भ्रमित विज्ञान को ही असली विज्ञान माना जाए और उसके ख़िलाफ़ बोलने वाले वैज्ञानिकों की आवाज़ दबी रहे. साथ ही यह भी कि अपना भोजन चुनने के मामले में आम जनों की स्वतंत्रता भी ख़त्म होनी चाहिए.

डॉ. वंदना शिवा ने कहा कि यह स्पष्ट है कि जीएमओ का विस्तार फासीवाद के माध्यम से ही हो सकता है. हमें अपना रास्ता ख़ुद चुनना होगा. हमें या तो बायोटेक उद्योग की तानाशाही को स्वीकार करते हुए उसके द्वारा थोपे गए असुरक्षित खाद्यान्न को चुनना होगा या फिर अपनी स्वतंत्रता बरक़रार रखते हुए जीएम मुक्त खाद्यान्न को अपनाना होगा.

अन्न स्वराज के उद्देश्य की पूर्ति के लिए नवदान्य के माध्यम से हमने खाद्यान्नों के चुनाव में पूर्ण स्वतंत्रता का विकल्प चुना है.

(लेखिका विख्यात पर्यावरणविद हैं)

feedback@chauthiduniya.com

वैश्विक स्तर पर जीएमओ–मुक्त आंदोलन के भविष्य पर नवदान्य द्वारा जारी घोषणापत्र, जिसे सम्मेलन में आम सहमति से पारित किया :-

- वैश्विक स्तर पर जीएमओ–मुक्त आंदोलन के प्रसार और मज़बूती के लिए हम प्रतिबद्ध हैं.
- बायोटेक इंडस्ट्री द्वारा विज्ञान की भ्रमित व्याख्या के माध्यम से दुनिया पर खाद्यान्न थोपे जाने के प्रयासों का हम विरोध करते हैं.
- हम पूरी दुनिया में कहीं भी अलोकतांत्रिक ढंग से जीएम फूड्स के थोपे जाने के प्रयासों का विरोध करते रहेंगे.
- हमारी मांग है कि खाद्यान्न और कृषि से संबंधित कोई भी फ़ैसला सर्वसम्मति से और अलग–अलग परिस्थितियों को ध्यान में रखकर लिया जाना चाहिए.
- अन्य उपलब्ध विकल्पों को छोड़कर, जैव प्रौद्योगिकी के विकास की कोशिश कर रही सरकारें पूर्वाग्रह का शिकार हैं, जो पर्यावरण, जन स्वास्थ्य और ख़ुद लोकतंत्र के लिए ख़तरनाक है. सरकारों को चाहिए कि इस क्षेत्र में होने वाले शोधों को कॉरपोरेट घरानों से दूर रखे ताकि जैव विविधता की सुरक्षा संभव हो और दीर्घकालिक रूप से वहनीय खेती के तरीक़े का विकास हो सके.
- दुनिया भर में हुए शोधों से यह साबित हो चुका है कि विविधता पूर्ण परिस्थिति का तंत्र हरित क्रांति अथवा जेनेटिक इंजीनियरिंग पर आधारित खेती के तरीक़ों से कहीं ज़्यादा बेहतर है. इसकी उत्पादकता ज़्यादा होती है और यह क्लाइमेट चेंज के ख़तरे से मुक़ाबला करने में भी ज़्यादा सक्षम है. सच तो यह है कि खाद्यान्न और पर्यावरण सुरक्षा के लिहाज़ से विविधतापूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र बेहद महत्वपूर्ण है.

आरुषि प्रकरण और न्याय

01–07 मार्च की आवरण कथा–फाइल बंद पढ़ी. अच्छा लगा कि आपने इतनी बेबाकी से सवाल उठाए. आरुषि हत्याकांड पूरे देश भर में चर्चा का विषय बना रहा. बावजूद इसके सीबीआई आज तक असली कातिल की गर्दन नहीं नाप सकी, यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है. एक संभ्रांत परिवार किस तरह की विषम परिस्थितियों से गुजरा होगा, यह बयान करना सहज नहीं है. उस पर तुर्रा यह कि अब यह मामला बंद किया जा रहा है. तो फिर कोई कैसे करे विश्वास कि देश में न्याय और कानून नाम की कोई चीज भी है!

जितेंद्र कुमार द्विवेदी, *लखनऊ, उत्तर प्रदेश.*

जॉर्ज को बचाना बहुत जरूरी

वयोवृद्ध नेता जॉर्ज फर्नांडीज को बचाने के लिए दोस्तों की अपील एक अच्छा कदम है. अपीलकर्ता देश के जाने–माने लोग हैं, उनकी कोशिश निश्चित ही कामयाब होगी. चौथी दुनिया ने जो शुरुआत की थी, यह उसी का असर है. जॉर्ज साहब के प्रति देश और समाज को अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए, यही वक्त का तकाजा है.

राम किशोर अग्रवाल, *इंदौर, मध्य प्रदेश.*

इस्लाम इंसाफ और बराबरी पसंद

ऑल इंडिया मुस्लिम वुमेंस पर्सनल लॉ बोर्ड की अध्यक्ष परवीन अबीदी का इंटरव्यू पढ़ा. उन्होंने सही कहा कि इस्लाम न्याय और समानता के विरोध में नहीं है. सच भी यही है कि इस्लाम ही क्या, कोई भी मजहब इंसाफ और बराबरी की खिलाफत नहीं करता. हां, यह बात दीगर है कि धर्म के ठेकेदार धर्म की व्याख्या अपने फायदे के लिए अलग–अलग तरीके से करते हैं. लोगों को ऐसे ठेकेदारों से सावधान रहना चाहिए.

फखरे आलम, *दिलशाद गार्डन, दिल्ली.*

बाघों को बचाइए

एक माह के भीतर चार बाघों की हत्या हो जाए, यह चिंता की बात है. शासन–प्रशासन के लिए तो डूब मरने की बात है. राज्य सरकार का अमला आखिर कर क्या रहा है? इतने संसाधनों के बावजूद अगर अधिकारी–कर्मचारी अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर पा रहे हैं तो उन्हें शर्म आनी चाहिए. अभी भी समय है कि सरकार चेते, अन्यथा बाद में सिर्फ और सिर्फ पछताना पड़ेगा.

सुंदर थपलियाल, *देहरादून, उत्तराखंड.*

स्वर्णिम मध्य प्रदेश

कोई भी सूबा तभी सही मायनों में प्रगति करता है, जब शासन–प्रशासन पूरी ईमानदारी से प्रयास करे. सिर्फ योजना बनाने और पैसा आवंटित करने भर से बात नहीं बनती. नाकामी के लिए सिर्फ सरकार को दोषी नहीं ठहराया जा सकता. अफसरशाही बड़े–बड़े काम बिगाड़ देती है. मध्य प्रदेश में भी कुछ यही हो रहा है. तभी राज्य में प्रयासों के बावजूद विकास कहीं दिखता नहीं है.

विप्लव शर्मा, *भोपाल, मध्य प्रदेश.*

जमशेद अशरफ की बर्खास्तगी

नीतीश सरकार के मंत्री जमशेद अशरफ की बर्खास्तगी यह बताती है कि शराब सिंडिकेट की पकड़ कितनी मजबूत है. अशरफ के आरोप अगर सही हैं तो यह निश्चित रूप से चिंता वाली बात है. किसी भी सरकार के लिए अपने मंत्रियों का विश्वास हासिल होना बहुत जरूरी है. यदि ऐसा नहीं होता है तो इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा.

मनोज कुमार, *कटहलबाड़ी, दरभंगा, बिहार.*

राज्य सरकार की उदासीनता

कचरे के चलते रोजी–रोटी का संकट रिपोर्ट तथ्यपरक है. झारखंड सरकार की उदासीनता की वजह से यह समस्या पैदा हुई है. धनबाद जिला प्रशासन ने भी अपनी तरफ से कोई कोशिश नहीं की. रोजगार के अवसर पहले से ही कम हैं, अब स्थिति और बिगड़ती जा रही है. सरकार को इस ओर तुरंत ध्यान देना चाहिए.

नित्यानंद पांडेय, *रांची, झारखंड.*

जनता भी सतर्कता बरते

जानलेवा एड्स के बारे में मध्य प्रदेश की रिपोर्ट ने आंखें खोल दीं. राज्य सरकार के लिए यह एक चुनौती जैसी बात है. स्वास्थ्य विभाग को इस खतरनाक बीमारी से बचाव के लिए पर्याप्त संसाधन मुहैया कराए जाने चाहिए. साथ ही जनता को भी इस संदर्भ में अपेक्षित सतर्कता बरतनी चाहिए. महामारियों से निबटना अकेले सरकार के वश की बात नहीं है, इसके लिए जनसहयोग बहुत जरूरी है.

प्रियांशु कुलश्रेष्ठ, *ग्वालियर, मध्य प्रदेश.*

माई नेम इज खान

शाहरुख खान की फिल्म माई नेम इज खान की रिलीज को लेकर हुए हंगामे ने प्रशासन से लेकर सियासी गलियों में हलचल मचा दी. शाहरुख की छवि का इस्तेमाल करते हुए मामले को राजनीतिक रंग दिया जाना शर्मनाक है. उधर चौथी दुनिया ने अपनी कवर स्टोरी में पूरे सच से पर्दा ही उठा दिया है. तब मालूम हुआ कि लोगों को असल में ठगा किसने है! खोजपरक एवं साहसपूर्ण लेखन के लिए बधाई.

राजीव सहरावत, *ई–मेल से.*

तोप मुकाबिल का इंतजार

आपका संपादकीय कॉलम तोप मुकाबिल पढ़ना अच्छा लगता है. आप विषय का काफी गंभीरता से विश्लेषण करते हैं. हर एक बात आसानी से समझ में आ जाती है. इसलिए हमेशा इस स्तंभ विशेष का इंतजार रहता है.

सोमनाथ गुप्ता, *इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश.*

पाठक अपने विचार और सुझाव हमें इस पते पर भेज सकते हैं-
संपादक, चौथी दुनिया, एफ-2, सेक्टर - 11
नोएडा (उत्तर प्रदेश) पिन-201301
ई-मेल पता : feedback@chauthiduniya.com

जब तोप मुक़ाबिल हो

महंगाई के नाम पर केवल हो-हल्ला

संतोष भारतीय

इस समय देश की आम जनता को लग रहा होगा कि काफ़ी दिनों बाद विपक्षी दल एकजुट होकर उससे जुड़े सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे महंगाई पर संसद के अंदर और बाहर दोनों जगह लड़ाई लड़ रहे हैं. पिछले पांच वर्षों में संसद में नौंवी बार महंगाई पर चर्चा की गई है. वर्ष 2008–09 में देश में 234 मिलियन टन अनाज देश में पैदा हुआ, ऐसे में कमी कैसे हो गई? अर्थशास्त्र का सीधा नियम है कि बाज़ार में कमी होने पर दाम बढ़ते हैं. जब आपके पास पर्याप्त अनाज है तो दाम कैसे बढ़े? ज़ाहिर है, व्यवस्था में ज़बरदस्त गड़बड़ है. किसानों का समर्थन मूल्य 8.5 रुपये बढ़ाया गया तो यूरिया की क़ीमत में 14 रुपये की बढ़ोत्तरी कर दी गई. ऐसे में किसानों को क्या मिला? इसलिए विरोधी दलों को लड़ना ही चाहिए. यह ज़रूरी भी था. अब तक सांप्रदायिकता के नाम पर कांग्रेस दूसरे तमाम विरोधी दलों को भारतीय जनता पार्टी के ख़िलाफ़ खड़ा करने में सफल होती रही है. पिछले कुछ दिनों से यह हालत बदली है. आपको याद होगा, कुछ माह पूर्व दिल्ली में गन्ने के समर्थन मूल्य और दूसरी ज़रूरी चीज़ों में हुई मूल्य वृद्धि को लेकर सभी विरोधी दलों ने मिलकर सरकार को घेरा था. उस समय भी कांग्रेस ने पूरा प्रयास किया था कि विरोधी दलों की यह एकता लंबे समय तक नहीं चले. बाद में उसे थोड़ी सफलता मिली भी थी, पर वह स्थाई नहीं रही. इसके लिए कांग्रेस ने महिला आरक्षण बिल लाकर भाजपा और वामपंथियों के आगे नया चारा भी डाला, पर वह भी स्थाई नहीं हो सका. सुषमा स्वराज ने साफ़ कह दिया कि महिला आरक्षण पर कांग्रेस को समर्थन केवल एक स्ट्रैटजी की तरह है, उसके बाद फिर महंगाई की बात होगी और सारे विरोधी दल एक स्वर में कांग्रेस की नीतियों का संयुक्त विरोध जारी रखेंगे. यह देखा गया कि सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी भाजपा महंगाई को लेकर बहुत आक्रामक हो गई है. ऐसे में वामपंथी दलों, लालू प्रसाद यादव की पार्टी राजद और मुलायम सिंह यादव की पार्टी सपा की मजबूरी हो गई कि वे भाजपा को इसका श्रेय न लेने दें. यही कारण है कि बजट पेश होने के दिन संसद के बाहर भाजपा के साथ न केवल मुलायम सिंह और लालू यादव खड़े दिखे, बल्कि वामपंथी भी उसी मंच पर थे. जहां तक हमें याद है, कांग्रेस के विरुद्ध ऐसी गोलबंदी 1974 के जेपी आंदोलन और वीपी सिंह के मोर्चे के बाद पहली बार दिखी. सुनने में तो यह बहुत अच्छा लगता है कि देश के विरोधी दलों को अचानक ही यह अहसास होने लगा है कि देश में सांप्रदायिकता से बड़ा मुद्दा महंगाई बन गया है. यह सच है कि दंगा कराने वाले तमाम गुंडों, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, जब तक पेट की भूख से तड़पते रहेंगे, तब तक दंगा करने का उनमें दम नहीं होगा. इसलिए सबसे पहले भूख का समाधान होना चाहिए.

लेकिन इससे भी पहले हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या कांग्रेस के ख़िलाफ़ खड़े इन तमाम विरोधी दलों का विरोध असली है? कहीं ऐसा तो नहीं कि यह सारा कुछ आम आदमी की आंखों में धूल झोंकने के लिए है. सरकार का कहना है कि महंगाई से केवल हमीं परेशान नहीं हैं, क्योंकि महंगाई इस समय अंतरराष्ट्रीय समस्या बन गई है. आपको कुछ साल पहले की बात याद न हो तो बताएं कि इंदिरा गांधी भी अपने जमाने में भ्रष्टाचार को अंतरराष्ट्रीय समस्या बताती थीं. बाद में भ्रष्टाचार को सरकारी कार्यालयों में अनौपचारिक रूप से स्वीकार लिया गया. ऐसा न हो कि आने वाले समय में कांग्रेस महंगाई को भी एक स्वीकार्य व्यवस्था के रुप में स्वीकार करा दे. इसलिए हमें थोड़ा सतर्क होकर इसकी चर्चा करनी चाहिए.

इसके पहले हमें अपने पड़ोसी देशों में बढ़ती महंगाई पर भी एक नज़र डालनी चाहिए. पिछले तीन वर्षों में हमारे सबसे क़रीबी देश बांग्लादेश में महंगाई की दर पांच फ़ीसदी से बढ़कर 18 फ़ीसदी तक जा पहुंची है. दूसरे पड़ोसी पाकिस्तान का हाल भी कम बुरा नहीं है. वहां पिछले तीन वर्षों में 14 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी दर्ज़ की गई है. नेपाल में आठ फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी के कारण लोगों ने नई सरकार के ख़िलाफ़ अनेक प्रदर्शन किए हैं. कमोबेश ऐसा ही हाल श्रीलंका का भी है. भारत चूंकि अपने सभी पड़ोसियों में सबसे बड़ा है तो हमने इसका पूरा ख्याल रखा है. हमारे यहां मूल्यों में पिछले तीन वर्षों में 80 फ़ीसदी की बढ़ोत्तरी दर्ज़ की गई है. कई चीज़ों के खुदरा दाम तो 100 फ़ीसदी से भी ज़्यादा बढ़े हैं. ऐसे में हमारे यहां अगर अब भी जनता को यह लगने लगा कि कांग्रेस लगातार उसे लूट रही है और दूसरे विरोधी दलों के लोग बेवजह के मुद्दों पर संसद का समय नष्ट कर रहे हैं, तो वह किसी भी विरोधी दल के नेता को उसके क्षेत्र में घुसने नहीं देगी. इसलिए महंगाई के विरोध में सड़कों पर उतरना उनकी मजबूरी हो गई है.

अब यहां सबसे ज़रूरी सवाल यह है कि क्या महंगाई केवल कांग्रेस के राज में बढ़ी है? 1977 की जनता पार्टी सरकार को याद करें. उसके पहले कांग्रेस के शासन में भी महंगाई को आसमान छूने वाला बताया गया था, लेकिन जनता सरकार में बाज़ार खुला रहा और महंगाई कम हो गई. तब लोग खुले बाज़ार में 2.30 रुपये प्रति किलो चीनी ख़रीदने लगे थे. दोबारा इंदिरा गांधी सत्ता में आई तो महंगाई बढ़ गई. वी पी सिंह के प्रधानमंत्री बनने के बाद फिर महंगाई कम हो गई. फिर कांग्रेस की वापसी हुई और महंगाई ज़्यादा बढ़कर सामने आई. एनडीए के सत्ता में आने के बाद भी महंगाई पर सरकार का पूरा नियंत्रण रहा, लेकिन 2004 में कांग्रेस के सत्ता में आने के बाद महंगाई का जो ग्राफ बढ़ा, उसने पिछले सारे रिकार्ड तोड़ने का तो जैसे मन ही बना लिया. और, कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए की दोबारा वापसी ने यही परंपरा क़ायम रखी. ऐसे में अगर विरोधी दलों ने जनता को सबसे ज़्यादा कचोटने वाले इस मुद्दे पर भी लंबा आंदोलन नहीं चलाया तो जनता उन्हें कैसे माफ करेगी? इसलिए संसद में या सड़कों पर धरना, प्रदर्शन और जेल भरो जैसे आंदोलन तो करने ही चाहिए.

सबसे ज़रूरी सवाल यह है कि क्या महंगाई केवल कांग्रेस के राज में बढ़ी है? 1977 की जनता पार्टी सरकार को याद करें. उसके पहले कांग्रेस के शासन में भी महंगाई को आसमान छूने वाला बताया गया था, लेकिन जनता सरकार में बाज़ार खुला रहा और महंगाई कम हो गई. तब लोग खुले बाज़ार में 2.30 रुपये प्रति किलो चीनी ख़रीदने लगे थे. दोबारा इंदिरा गांधी सत्ता में आई तो महंगाई बढ़ गई.

पर हमारा सवाल यह है कि क्या विरोधी दलों के नेतागण सचमुच देश की आम जनता के लिए दिल से संघर्ष कर रहे हैं? कहीं यह सारा कुछ उनका ड्रामा भर तो नहीं है? प्रमुख विपक्षी दल भाजपा ने यूपीए पर लगातार आरोप लगाए हैं कि चीनी को लेकर सरकार ने 400 करोड़ रुपये का घोटाला किया है. पर भाजपा ने इसमें शामिल अधिकारियों को, जिनकी राय पर कृषिमंत्री ने चीनी का आयात–निर्यात किया, बख्श कैसे दिया? इसके अलावा उन्होंने अब तक कोई कंक्रीट सुझाव सरकार को नहीं दिया है, जिससे भटकती कांग्रेस सरकार को कोई रास्ता भी सूझे, अगर वह ऐसा करना भी चाहे. वामपंथियों ने तो जैसे अंधविरोध को आदत बना ली है, पर उनकी ओर से कोई ठोस सुझाव अभी तक कहीं दिखा नहीं है. तेल की क़ीमत अंतरराष्ट्रीय बाज़ार से प्रभावित होती है, यह ठीक है. उसके कारण भी क़ीमतों पर असर होता है. पर क्या केवल इसके लिए तेल की क़ीमतें ही ज़िम्मेवार हैं? यहां हमारी ओर से एक सवाल है, आख़िर क्यों क़ीमतों की यह हालत भारत और हमारे आसपास के मुल्कों में है? हम यह मानते हैं कि इसके लिए बाक़ी कुछ और चीज़ों के अलावा हमारी प्रशासनिक व्यवस्था ज़िम्मेवार है, जो सरकार के किसी भी कार्यक्रम को ज़मीन पर उतरने नहीं देती. हमारी जन वितरण प्रणाली भ्रष्ट है. हमारे अधिकारियों को यह पता नहीं है कि एक परिवार को कितना गेहूं, चीनी और चावल चाहिए. अनाजों के भंडार भरे हैं, पर आप उसे बांट नहीं रहे, चाहे अनाज सड़ कर बर्बाद हो जाए. देश में ज़रूरत के अनुसार चीनी रखी जाए, तब उसका निर्यात हो. पर हम सस्ते दर पर निर्यात करते हैं और महंगे दर पर चीनी आयात करते हैं और उस पर भरपूर लाभ कमा कर जनता को खुले बाज़ार में बेचते हैं. इसी से जुड़ा यह सवाल भी है कि जब सारा कुछ हमारे प्रशासक ही करते हैं तो इन्हें पोसने वाली सरकार और सत्ता में रहने वाले राजनैतिक दल को कैसे बख्शा जा सकता है? अगर सभी विरोधी दल पूरी ईमानदारी से एक हो जाएं तो क्या कांग्रेस की सरकार एक दिन भी चल सकती है? पर क्या विरोधी दल ऐसा करने का साहस रखते हैं?

संपादक
editor@chauthiduniya.com

विफल बातचीत या उम्मीद की एक नई किरण

कट्टरपंथियों की बांछें खिली हुई हैं. वे यह सोचकर आह्लादित हो रहे हैं कि नई दिल्ली में पाकिस्तान और भारत के विदेश सचिवों के बीच हुई बातचीत का ऐसा कोई नतीजा नहीं निकला, जिसे उम्मीद की एक नई किरण के रुप में देखा जा सके. कई अख़बारों ने इसे चटखारे वाली हेडलाइन के साथ अपने पहले पन्ने पर जगह दी. कुछ लोग तो इस बैठक के आयोजन पर ही सवाल उठा रहे हैं. उर्दू भाषा के अख़बारों में इस पर ख़ूब लिखा जा रहा है कि बातचीत के लिए विदेश सचिव को सीमा पार भेजने की ज़रूरत क्या थी. भारत से स्वदेश वापस लौटने पर मीडिया के साथ बातचीत में ख़ुद सलमान बशीर ने भी इन्हीं बातों को हवा दी.

लेकिन, इस सारे हंगामे के बीच हमें स्थिति की वास्तविकता का भी ध्यान रखना होगा. सच तो यह है कि पाकिस्तान के साथ किसी भी स्तर की बातचीत दोबारा शुरू करने के लिए भारत में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और कांग्रेस पार्टी की जमकर आलोचना हो रही है. मीडिया का एक वर्ग, जो दूसरे देशों की आलोचना के मामले में पाकिस्तान की तरह ही ग़ैर–ज़िम्मेदार लेकिन कहीं ज़्यादा व्यवस्थित है, नवंबर 2008 में मुंबई में हुए आतंकी हमले की यादों को ताजा करने की हरसंभव कोशिश कर रहा है. सरकार की कमज़ोरी को भांपते हुए विपक्षी दलों ने मनमोहन सिंह को निशाने पर लिया और भारतीय पक्ष चौकस रुख़ अपनाने पर मजबूर हुआ. बातचीत के एजेंडे में किसी गंभीर विषय का न होना इसी का परिणाम था, हालांकि ऐसा करना कितना तार्किक है, यह विचार का एक अलग प्रश्न है. लेकिन, क्या बातचीत को सिरे से विफल करार देना सही है? दरअसल, यह हमारे लिए अत्यधिक उमस के बीच ठंडी हवा के एक नए झोंके के सुखद अहसास की तरह है. हो सकता है, यह दीवार में पड़ी दरारों के बीच से झांकने की कोशिश भर हो. यह भी हो सकता है कि खिड़कियां और दरवाजे अभी भी बंद ही रहें, लेकिन कम से कम यह एक कोशिश तो है. इन दरारों के बीच उंगलियां डालकर बड़ी खिड़कियां बनाई भी तो जा सकती हैं. इसमें समय लगेगा, लेकिन कम से कम ऐसा होने की उम्मीद तो की ही जा सकती है. वैसे भी इलाक़े में शांतिपूर्ण माहौल की ज़रूरत को देखते हुए हमारे पास और कोई विकल्प भी नहीं है. लेकिन यह तभी संभव हो सकता है, जब भारत और पाकिस्तान अपने संबंधों में नज़दीकियां बढ़ाकर विवादित मुद्दों का समाधान ढूंढने की कोशिश करें. इन मुद्दों में आतंकवाद भी शामिल है, लेकिन केवल आतंकवाद ही नहीं है. यह भी सही है कि आतंकवाद के मुद्दे पर भारत को अपने नज़रिए में बदलाव लाने की ज़रूरत है. हर बात के लिए पाकिस्तान पर उंगली उठाने की बजाय भारत को अपनी सरजमीं पर आतंकवाद के मूल कारणों को जानना होगा. इनमें से कुछ कारणों की जड़ बेशक़ कश्मीर में केंद्रित है. इन वजहों को जाने बग़ैर लश्करे–तैयबा के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने के लिए पाकिस्तान पर दबाव डालना वास्तविकता से मुंह मोड़ने जैसा है.

विरूपमा राव

सलमान बशीर

सलमान बशीर ने भारत में फैले पाकिस्तान विरोधी माहौल को भी किसी उद्देश्यपूर्ण बातचीत में एक बड़ा बाधक बताया. वह अपनी जगह बिल्कुल सही हैं. भारत के कई इलाक़ों में यह माहौल एकदम स्पष्ट नज़र आता है. ख़ासकर मुंबई हमलों के बाद इसमें और इज़ाफ़ा हुआ है. लेकिन यह भी सच है कि पाकिस्तान में भी कट्टरपंथी ताक़तों की कोई कमी नहीं है. विदेश सचिवों के बीच बातचीत और उसकी विफलता को बताने वाले मीडिया में इसकी स्पष्ट झलक दिखती है. हैरत की बात तो यह है कि भारत विरोधी माहौल ऐसे इलाक़ों में भी दिख जाता है, जहां इसके होने की आशंका नहीं के बराबर है. उक्त भावनाएं लोगों के दिमाग़ में बरसों से गहरी जमी हुई हैं और पाकिस्तान सरकार के भारत विरोधी रवैये ने इसे अच्छी तरह सींचा है. सरकार का यह रवैया अक्सर एक धर्म विशेष को दूसरे से बेहतर और यहां तक कि इन्हें मानने वालों को एक–दूसरे का शत्रु बताने की कोशिश में बदल जाता है.

इस मानसिकता को बदलना इतना आसान नहीं है, लेकिन यह नामुमकिन भी नहीं है. यूरोप में काले लोगों के प्रति नज़रिए में बदलाव, अमेरिका में बराक ओबामा और लैटिन अमेरिका के कई देशों में भारतीय मूल के लोगों का राष्ट्राध्यक्ष के रूप में चुनाव आदि घटनाएं लोगों की मानसिकता में आए परिवर्तन का ही नतीजा हैं. स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली किताबों की इसमें बड़ी भूमिका होती है और मीडिया की भी. भारत और पाकिस्तान के मामले में भी ऐसी ही कोशिश करनी होगी. यह तब तक मुमकिन नहीं हो सकता, जब तक दोनों देशों की सरकारें शांति की अनिवार्यता को न समझें. तभी लंबे समय के लिए शांतिपूर्ण संबंधों की नींव तैयार हो सकेगी.

पिछले दो दशकों में एक सोची–समझी नीति के तहत पाकिस्तान मध्य–पूर्व के देशों के ज़्यादा नज़दीक आता रहा है. पश्चिमी देशों की नज़रें तनी तो पाकिस्तानी जनता को अरब देशों में अपना हमदर्द नज़र आने लगा. हालत यह है कि महिलाओं द्वारा पारंपरिक रुप से पहना जाने वाला बुर्का के मुक़ाबले मध्य–पूर्व के देशों में प्रचलित अबायास फैशन का प्रतीक बनने लगा है. लोगों की ख़ुद के बारे में सोच को बदल कर भूगोल की रेखाओं को नए सिरे से जोड़ने की कोशिश में प्रोपेगंडा की भूमिका कितनी अहम हो सकती है, यह इसके सबसे रोचक उदाहरणों में से एक है. लेकिन पाकिस्तान के लोगों को अपने और नज़दीक, उपमहाद्वीप में ही मौजूद अपने बिखरे हुए सूत्रों को तलाशना होगा. अतिवाद और कट्टरवादिता के प्रति हमारे बढ़ते झुकाव से बचने का भी शायद यही एक रास्ता बचा है. हम लाख तलाशें, लेकिन कोई और विकल्प नज़र नहीं आता. भारत की विविधता हमारे लिए उम्मीद की एक किरण जैसी है. साथ ही यह आशा भी कि ग़रीबी और निराशा से जूझ रहे पाकिस्तान पर पड़ोसी मुल्क के आर्थिक विकास का कुछ तो असर पड़ेगा.

बातचीत के इस नए दौर से दरवाजे में एक झिर्री बनी है. अब इसे और चौड़ा करने की ज़रूरत है. दोनों देशों के राजनीतिक नेतृत्व को भी लोगों की मानसिकता, उनकी सोच में बदलाव की ज़रूरत महसूस करनी होगी. इसमें कामयाबी हासिल करना इतना आसान नहीं है. शायद इसमें बहुत ज़्यादा समय भी लगे, लेकिन सबसे पहले इसकी शुरुआत करनी होगी. इसकी शुरुआत के लिए हम जितनी देर प्रतीक्षा करेंगे, उतना ही ज़्यादा समय इसकी कामयाबी में भी लगेगा. लेकिन सच्चाई यह है कि सालों की दुश्मनी और अतिवादी विचारधारा के प्रसार के कारण बुरी तरह बर्बाद हो चुके इस इलाक़े के पास ज़्यादा समय नहीं है. अब इसकी शुरुआत करनी ही होगी. प्रयासों में विफलता हमारे दिमाग़ की सोच का एक हिस्सा भर है. दोनों देशों के विदेश सचिवों के बीच हाल में हुई बातचीत के लिए इसका बार–बार इस्तेमाल किया जा रहा है, लेकिन इस नाकामयाबी के बीच भी कामयाबी के कुछ सूत्र तलाशे जा सकते हैं. शत्रुतापूर्ण कटाक्षों के लंबे दौर के बाद नई दिल्ली और इस्लामाबाद के बीच संपर्क सूत्रों का दोबारा जुड़ना, भले ही यह कितना भी छोटा क्यों न हो, एक नई शुरुआत के रुप में देखा जा सकता है. अभी हम एक नई धारा के मुहाने पर खड़े हैं. हो सकता है, यह हमें कहीं भी न ले जाए, लेकिन यह एक नए दौर की शुरुआत भी हो सकता है. बदलावों का एक नया दौर, जो करोड़ों लोगों की ज़िंदगी बदलने का माद्दा रखता है.

हो सकता है, यह दीवार में पड़ी दरारों के बीच से झांकने की कोशिश भर हो. यह भी हो सकता है कि खिड़कियां और दरवाजे अभी भी बंद ही रहें, लेकिन कम से कम यह एक कोशिश तो है. इन दरारों के बीच उंगलियां डालकर बड़ी खिड़कियां बनाई भी तो जा सकती हैं.

कमिला हयात

(लेखिका पाकिस्तान की वरिष्ठ पत्रकार हैं)

feedback@chauthiduniya.com